दिव्य जीवन
ॐ
श्री श्री 108 रामदास जी महाराज
(करह वाले बाबा जिला मुरैना)

श्री 108 बाबा रामरतन दास जी महाराज, श्री 108 तपसी श्री सीताराम दास जी महाराज
श्री 108 श्री सिद्ध बाबा, श्री 108 लखनदास जी महाराज
श्री 108 रामदास जी महाराज

// श्री रामचन्द्रायनमः //

अनन्त श्री विभूषित

महाराज श्री रामदास जी

(करह वाले बाबा)

का

दिव्य - जीवन

लेखक :

डॉ. राधारमण शर्मा

एम.ए., संस्कृत, हिन्दी, पी.एच.डी.

(स्वर्ण पदक प्राप्त)

सौजन्य से

श्री 108 बाबा रामकिशन दास

हनुमानगढ़ी, नूराबाद, जिला-मुरैना (म.प्र.)

द्वितीय संस्करण सम्वत् 2064

पुस्तक प्राप्ति स्थल

बाबा रामकिशन दास

हनुमानगढ़ी, नूराबाद, जिला-मुरैना (म.प्र.)

द्वितीय संशोधित संस्करण-2007

साज-सज्जा

हरीश कुशवाह

ग्वालियर (म.प्र.)

मुद्रक

जैन प्रिंटिंग प्रेस

दाल बाजार, ग्वालियर

* न्यौछावर : पच्चीस रुपए मात्र

विषय-सूची

श्रीहरिः

✡ **श्री गणेशाय नमः** ✡

पूर्वाम्नाय - श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरीपीठाधीश्वर

श्रीमज्जगद्गुरु - शङ्कराचार्य - स्वामी निश्चलानन्दसरस्वती

श्रीगोवर्द्धनमठ - पुरी 752001 (उड़ीसा)

Tele - Fax 06752-231094

निज सचिव - श्री निर्विकल्पानन्दप्रकाश,

दूरभाष (06752) 231094, 231716

मो. : 9437031716, 9437004795

क्रमाङ्क - शिविर स्थल - ग्वालियर तिथि - 30.10.2007

सेवा, सहानुभूति, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, सामञ्जस्य - सम्पन्न श्रीहरिभक्त सन्तों का अद्‌भुत महत्व है। ऐसे सन्त सुरनायक सर्वेश्वर के कृपापात्र और लोकनायकों के आस्था केन्द्र होते हैं। इसी संदर्भ में करह वाले श्रीरामदास बाबाजी का संस्मरण कर्तव्य है। उन्होंने सिद्धकल्प सन्तों का सान्निध्य लाभ कर जीवन के चरम चरण तक भगवत्कथामृत से सन्तों और सद्गृहस्थों को सन्तृप्त किया। उनके मधुर संस्मरण में यह वचन-कुसुमाञ्जलि समर्पित है।

-निश्चलानंद सरस्वती

अनन्त श्री विभूषि
बाईमहाराज
श्री किशनदासी
अध्यक्ष
विजयराघव सरकार ट्रस्ट
करह धाम।

बाबा महाराज अनन्त
श्री रामचरण दास
फलाहारी
वर्तमान पीठाधीश
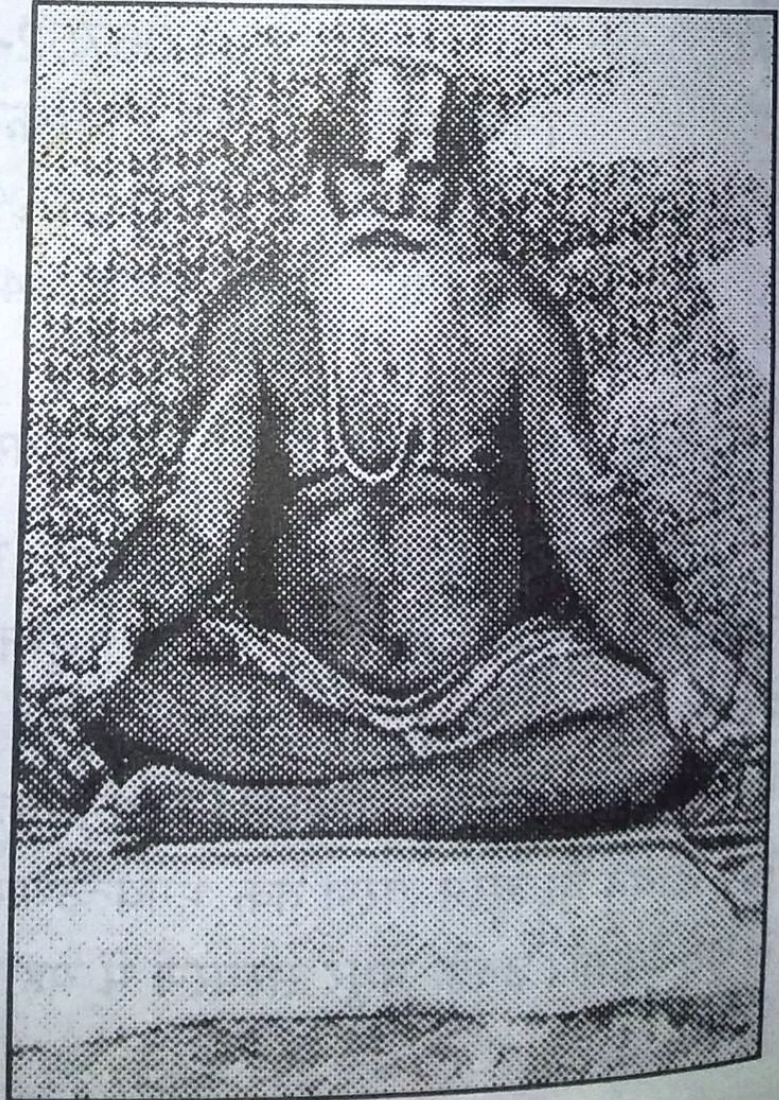
आत्म निवेदन
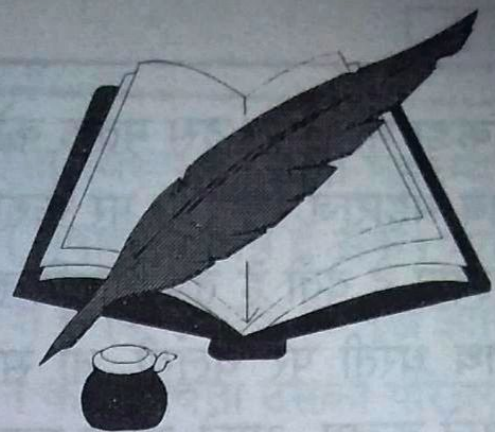
अनन्त आसमान को कौन समर्थ अपनी मुट्ठी में बंद कर सकता है? सम्पूर्ण समुद्र के जल को कौन अपने चुल्लू में भर सकता है? ब्रह्मा की रचना में ऐसी नाक किसकी है, जो ब्रह्माण्ड भर की हवा को अपनी नाक में बंद कर रोक ले? ऐसा कोई भी समर्थ आज तक इस धरती पर जन्म नहीं ले पाया। हाँ, एक बात प्रत्यक्ष है परमात्मा के प्यारे दुलारे भक्त प्रेमियों ने अपना सर्वस्व त्यागकर उन सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ प्रभु को आत्मसात कर लिया, जिनके परम विलक्षण चरित्र पुराणों में भरे पड़े हैं और आज भी समाज में संसार के सामने प्रत्यक्ष है। इन प्रेमी भक्त साधकों के अनुकरणीय चरित्र सतत् लोकमंगल सर्वजनहिताय - सर्वजनसुखाय की साधना में निरन्तर पुरुषार्थरत हैं, जिसके लिए उनके परम प्रभु ने अवतार लिया। ऐसे सन्तों का सामान्य चलना-फिरना भी लोक कल्याण की साधना के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। दीन-हीन अकिंचनों का मंगल ही मंगल करता है। श्रीमद्भागवत में कथन है -

महद् विचरणं ग्रहीणां दीनचेतसाम्॥

इतना ही नहीं, जहां उनके चरण पड़ते हैं, वहां तीर्थों की स्थापना हो जाती है। भागवतकार कहते हैं -

भवदिधा भागवतस्तीर्थी भूतास्वयंविभो।
तीर्था कुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तः स्थेन गदाभृतम॥

जो गंगा मरणोपरान्त चिता से चुनी हुई किसी मृत की हड्डी का

टुकड़ा भी पाकर उस मृतक को पावन बना देती है, कल्याण कर देती है। वे जब महाराज भागीरथ पर करुणा से भवीभूत होकर उनके साथ चलने का वरदान दे देती है तब भावविव्हल होकर कहती है, राजेन्द्र! जब मैं तुम्हारे साथ धरती पर चलूंगी, तो संसार के समस्त पापी मिथ्याचारी, दुराचारी, अपने कलुष, अपने अशेष पाप मुझमें छोड़ेंगे तब उनके सबके पाप भार से मेरा क्या होगा ? महाराज दृढ़ता से बोले - माँ यदि एक ओर ये समस्त पापी दुराचारी अपना पाप छोड़ेंगे, तो जो भगवान के भक्त जिनके चरण पाकर भूमि तीर्थ बन जाती है, जिनके रोम-रोम में चतुर्भुज नारायंण ही अधिष्ठित हैं, ऐसे पतित-पावन तीर्थ चरणों को लेकर आपमें स्नान करेंगे, तो आपके अशेष पाप उनकी चरण रज का एक ही कण पाकर सदा को नष्ट हो जाएंगे।

नीति कहती है -

गंगाजी पापों को, चन्द्रमा ताप को और कल्प वृक्ष दीनता को दूर करता है किन्तु संत भक्त का केवल दर्शन मात्र ही पाप, ताप, दैन्य, सन्ताप सब कुछ नष्ट कर देता है।

''गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्प तरुस्तद्यथा।
पापं तापं च दैन्यं च हरते सज्जन संगमः ॥''

संत भक्त के इसी गौरवमय स्वरूप को समझकर परमात्मा भी उन संतों को अपने से बड़ा मानते हैं। गोस्वामी जी कहते हैं -

''सातवं सममोहिमय जगदेखे।
मोते संत अधिक सना करिबेखे॥''

तीर्थ स्नान का तो केवल एक ही फल है, किन्तु संत दर्शन तो चारों ही फल - अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष का दाता है। कबीर साहब कहते हैं -

तीर्थ नहाएँ एक फल संत मिलें फल चारि।
सद्गुरु मिलें अनन्त फल कहें कबीर विचारि॥

जिस संत का प्रभु के प्रेमी का ऐसा स्वरूप है, इतना महात्म्य है, तब कौन समर्थ है जो उस प्रेमी के प्रेम का यथार्थ परिचय दे सके। भगवान के प्रेमी के प्रेमतत्व का स्वरूप इतना प्रभावी है कि जिसके सम्मुख ज्ञानियों का ज्ञान, विरागियों का वैराग्य और भगवान की भगवत्ता उसका परिचय देने में सर्वथा असमर्थ है।

संसार में जितने समस्त सर, सरोवर, सरिता, सागर सभी तरे जा सकते हैं, सबकी थाह लेना संभव है किन्तु प्रेम-सिन्धु तो सदा दुस्तर ही रहा और रहेगा। गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं -

तुलसी न समरथ कोऊ जो तरिसकै सरित सनेह की।

युगसृष्टा, युगदृष्टा कर्ता, भर्ता, हर्ता सभी समर्थ यहां पूर्णतः असमर्थ है। प्रेमी के प्रेम की थाह लेना तो दूर उसकी छाया भी नहीं छू सके -

विधि गनपति अहिपति शिव सारद।
कवि कोविद बुध बुद्धि विशारद॥
भरत चरित कीरति करतूती।
धरम सील गुन विमल विभूती॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू।
सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू॥

अगम सबहि बरनत बरबरनी।
जिमि जल हीन मीन गम धरनी॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी।
जानहिरामु न सकहिं बखानी॥
कहे काह छल छुअति न छाँही।

इस प्रेमी के प्रेम का विशाल समुद्र जिसे, ब्रह्मसत्ता नहीं कह सकती, उसका परिचय देने में किसी दूसरे का सामर्थ्य कहां? महाराजश्री को समस्त प्रेमी परिवार भली भांति जानता है। महाराजश्री के राम प्रेम के इस भाव में

उनका हृदय परिपूर्ण है। जिसमें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम जैसा करुणा, भरत का अगाध प्रेम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न की सेवा, हनुमान जैसा परोपकार भक्त संकटहरण, दीन-दुखियों की सेवा का भाव, महावीर स्वामी जी की अहिंसा, बुद्ध की दया, तुलसी की भक्ति रोम-रोम से प्रकट थी। सदा सब पर अक्षय रूप से बरसती थी, ऐसे महानतम अगाध चरित्र सिंधु थे। मुझसा भूला-भटका, कलि मर्दम का कीट, सर्वथा असमर्थ जीव उसे लिखने का साहस कैसे कर सकता है। यह तो इस अकिंचन की अन्तर्वेदना, परिवार के प्रेमियों का आग्रह ही मात्र अवलम्ब है। जिसे पाकर ही लिखने का मनोबल जुटा सका हूं।

मूल रूप से इस चरित्र का आधार स्वयं श्री महाराज जी के श्रीमुख से ही निकली वाणी है। सर्वप्रथम सं. 2058 माघी मौनी अमावस्या रात्रि को महाराज जी प्रवचन देते थे। तब यह शरीर दो वर्ष निरंतर वहीं रहा, महाराज जी को अवसर मिलने पर पुराण सुनाए भी। प्रातः एवं सायं सरकार के श्रीमुख से सुने भी। परिकर के सभी प्रेमियों ने आग्रह किया, सभी ने प्रार्थना की, उनने कृपा की और स्वयं श्रीमुख से कहने लगे। हमारा क्या चरित्र। चरित्र तो प्रभु श्री सीताराम जी का ही है। स्वयं ही बोलने लगे। जन्मतिथि तब भी निश्चित नहीं बतलाई। महाराज श्री की डायरी के मुताबिक 1954 या 1945 श्रावण शुक्ला सप्तमी बतलाई। जो कि प्रमाणिक है या नहीं, इसका निर्णय स्वयं प्रेमी पाठक तथा भक्त करें। इसका निर्णय आप सभी का हृदय है।

महाराज श्री के श्रीमुख से सुना उसका सार यह है कि उनका व्यक्तित्व बहु आयामी है। असीम है। उनका प्रवचनकार स्वरूप इतना अद्भुत था कि उसमें उपस्थित श्रोता जो भी जिस योग्यता वाला होता आश्चर्य में उनके भाव में, रस में डूब जाता। सभी इस रहस्य पर सोचते रहे, कहते - आपने कब इन समस्त पुराणों का, ग्रंथों का अध्ययन कर लिया। धर्म सम्राट स्वामी

श्री करपात्री जी महाराज जो ज्ञान मूर्ति थे। शारदा आपकी वाणी पर नृत्य करती थी, बोलते तब ऐसा लगता था, मानो धरा और गगन मिल रहे हैं, वे भी महाराज श्री को बहुत सम्मान देते थे। वाराणसी विश्वविद्यालय में प्रवचन हुआ। उपक्रम सामान्य दोहे से किया -

ज्ञानडुमुडुमी को सुने जहाँ बजे प्रेम को ढोल।
ऊधो सूधो है गयो सुनि गोपिनि को बोल॥

प्रतिपादन में आपने ज्ञान एवं भक्ति के गूढ़तम रहस्यों का उद्घाटन किया, जिसे सुनकर ज्ञानधाम, काशी स्तब्ध रह गया।

भक्ति महारानी की नृत्यस्थली वृन्दावन में सिद्ध संत श्री हरिबाबा महाराज, उड़ियाबाबा महाराज, विद्वदा शिरोमणि स्वामी श्री अखण्डनन्द जी, गोस्वामी अतुलकृष्ण जी, रासबिहारी, पं. नत्थीलाल जी, भक्तमाली जी आदि ब्रजभूषण संत, भक्त विद्वान आचार्य आपके श्रीधाम में पधारने पर परम प्रसन्न हो जाते थे। अपूर्व हर्ष सागर आनंद के ज्वार में डूब जाता। अपने श्रीमुख से स्वामी जी कहते थे। ग्वालियर वाले रामायणी बाबा महाराज पधार गए हैं आनंद होगा। सम्मान देकर महाराज श्री से प्रवचन के लिए निवेदन करते थे, तब बड़ी विनम्रता से हाथ जोड़कर महाराज श्री कहते - आप स्वामी हैं, हम दास हैं।

मानस पीयूष जिसे रामचरित मानस का "इनसाइक्लोपिडिया" अर्थात् वृहदकोष कहा जाए, वह सबही आपको कंठस्थ था ही, उसकी व्याख्या को भी अपने चिन्तन से भाव रस धारा से ऐसा हृदयस्पर्शी बना देते, जो मन से बुद्धि से कभी दूर होता ही नहीं था।

विरक्ति के इतिहास में देखते हैं कि आज तक जितनी भी वैराग्यवान विभूतियां हुईं, प्रायः सभी विरागी कुछ समय के घर गृहस्थ के संपर्क में रहकर ही वैराग्य लेकर, त्यागी बनकर निकले, किन्तु इनका इतिहास तो ठीक इससे उलटा है, लगता है इन्हें तो वैराग्य स्वयं ही लेकर जन्मा। प्रारंभ

से ही न घर, न गृहस्थी, न कोई ममता का बंधन। शासकीय सेवा भी कुछ समय की, तो उससे भी दीन सेवा, सन्त सेवा, मन्दिर सेवा एवं उत्सव ही करते रहे।

बाई महाराज साक्षी हैं, कहती हैं दिन भर सेवा, रात भर लेखन, इतना विपुल साहित्य संचित किया, जो उनकी डायरी, काँपियों, कैसिट्स में भरी पड़ी हैं, शायद लेखक बनकर उन्हें ही कोई जीवन भर लिखता रहेगा। उनका सच्चिदानंद स्वरूप कृपा करता ही रहेगा। इन सबका सुसंयोग उनकी, कृपा से आगे आता ही रहेगा। जहां पर हैं, जैसे हैं, वे ही कृपा करेंगे।

चेतना में रचना के नामकरण की कल्पना जाग्रत हुई। एतदर्थ प्रमाण में सत्य प्रमाण जो सर्वविदित है, श्री महाराज श्री स्वयं अनेक बार श्रीमुख से सुनाए। उनाव की यज्ञ से लौटते समय श्री बड़े महाराज ओरछा श्रीरामराजा दर्शनार्थ पधारे। संयोग से श्रमाधिक्य से छोटे महाराज श्री को बहुत तेज बुखार हो गया। बड़े महाराज श्री बहुत व्याकुल हो गए। रात्रि में जब सो गए, तब भाव विह्वल होकर रामराजा के चरणों में आंसुओं की माला समर्पित करते हुए, दीन वाणी में प्रार्थना करने लगे। भक्तवत्सल गरीब नवाज, राजाधिराज। यह रामदास पढ़ा-लिखा है, यह आपके नाम एवं कथा से जगत का कल्याण करेगा, हम अपनी आधी उम्र आज उसे दान करते हैं, वह ठीक हो जाए। तुरन्त छोटे महाराजश्री के कमरे में जो बुखार से हलकी बेहोशी जैसी हालत में थे, सम्मुख महाराजश्री को देखकर चरणों में गिर पड़े। सिर पर कृपा का हाथ फेरा। चले गए। बुखार उन्हें हो गया। छोटे महाराज श्री स्वस्थ हो गए। श्री बड़े महाराजश्री के साकेतवासी होने पर आपने कई बार कहा - यह आयु अब बड़े महाराजश्री की है। सम्वत् 2058 से यह कहना प्रारंभ कर दिया। अब वह भी आयुपूर्ण हो गई। तो यह स्वतः प्रमाण है, उसी जीवन का अवशिष्ट जीवन है, अतः नाम 'दिव्य जीवन' नाम ही सर्वथा उचित है।

आने वाली पीढ़ियां इस बात पर आश्चर्यपूर्वक भरोसा करें कि संसार में हाड़मांसधारी, दिव्य पुरुष इस धरा धाम पर अवतीर्ण होकर केवल अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में इतना व्यापक, विस्तृत लोकमंगल नितान्त अल्प अवधि में चरितार्थ किया हो। उनका कर्म ही त्याग, निष्ठा प्राणी मात्र पर दया का भाव जगत को ईश्वर का ही स्वरूप मानकर तन, मन, धन से सम्पूर्ण जीवन को समर्पित किया। वर्तमान युग में यहां भौतिक समृद्धि, संग्रह एवं भोग तथा जातिवाद, परिवारवाद या सम्प्रदाय विशेष हावी हैं, जिधर भी दृष्टि जाए, उधर इस सबका ताण्डव नृत्य दर्शनीय है। तपोभूमि, गिरिकन्दरा एवं एकान्त, शान्तिप्रिय, प्रकृति माँ के पावनतम अंक को छोड़कर व्यावसायिक दृष्टिकोण अपनाते हुए राजमार्गों, चतुप पदों एवं नगरीय अंचलों की ओर जहां केवल प्रदूषण के अतिरिक्त कुछ नहीं, यदि है तो केवल अर्थोपार्जन। महाराज श्री के दिव्य जीवन में न तो किसी राजनीति, न कोई सम्प्रदाय, न भाई भतीजावाद, न जातिवाद न अर्थवाद, न भोग, न संग्रह उनका तो संकल्प केवल यही प्रारंभिक जीवन से रहा –

संपत्ति सब रघुपति की आही।

और उसको समस्त को उन्हें अपने प्यारे परमात्मा का स्वरूप मानकर केवल उन्हीं की सेवा, उन्हीं के कल्याण के लिए समर्पित किया। उन्हें इस बात का विशेष ध्यान था कि जगत किसी न किसी व्यथा से रोग से पीड़ित है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व जो स्थान केवल हिंसक एवं जंगली जीवों का ही घर था जनशून्य। दण्डकारण्य से भी घोर भयावह, लोकदृष्टि से सदा अछूता। जहां पहुंचने का न कोई अर्थ, न कोई मार्ग। ऐसे स्थान को आपने साकेत का रूप देकर इस भारत माता के अंक में अपने दिव्यजीवन से ऐसे अलौकिक प्रकाश से प्रकाशित किया। जिसे न कभी कोई अस्त कर सकेगा न कोई ग्रहण ही लग सकेगा। इसका ही मूर्तरूप है "करह"। इसी की

समता में टेकरी, जरारा, नूराबाद, खेरागढ़, वृंदावन एवं चित्रकूट आदि में ऐसे ही पवित्र तीर्थ स्थापित किए हैं।

"दिव्यजीवन" अनन्तश्री विभूषित रामजी शास्त्री जी ने यही हनुमानगढ़ी पर लिखा। श्री दिव्य बड़े महाराज जी यहां विराजे। छोटे सरकार बारह बरस तो निरन्तर यहीं बिराजे, उन्हीं के पावनतम चरण धूलि में यहीं पर वर्तमान में कृपातीर्थ अनन्त श्री विभूषित श्री रामकिशन दास जी महाराज की कृपा से इस अकिंचन के द्वारा लिखा गया, साथ ही भक्ति स्वरूप साध्वी सियारामजी की अमित कृपा रही। साथ ही अठारह पुराणों का अनुशीलन पाठ एवं कथा कहने का परम सौभाग्य मिला। यही एक वर्ष का समय मेरा जीवन कहे जाने योग्य है।

इस पुनीत कार्य में आचार्यचरण श्रद्धेय दामोदर प्रसाद जी व्याकरणाचार्य निवृत्त प्राध्यापक, संस्कृत महाविद्यालय, ग्वालियर का आभारी हूं।

ट्रस्टी अध्यक्ष बाई श्री किशनदासी, उपाध्यक्ष बाबा महाराज श्री रामचरणदास फलाहारी की पूर्ण कृपा ही संबल बनकर अकिंचन को उबारती रही। श्रम साधना के सागर से उबारने में मेरे सहोदर अनुज श्री रामेश्वरदयाल एवं चि. ब्रजकिशोर के साथ पूरे परिवार का सहयोग - आत्मीय भाव ही रहा। डॉ. अनुराग शर्मा भी पूरे कार्य में सहायक रहे।

डॉ. कृष्ण मुरारी शर्मा सा. पूर्व संकायाध्यक्ष एवं प्रोफेसर जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर का आशीष एतदर्थ ही जीवन का एकमात्र पाथेय रहा, उनकी कृपा को चिर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं।

स्नेहास्पदेय चि. रूपेश जी उपाध्याय तहसीलदार ग्वालियर का परिवार के साथ समय-समय पर सहयोग मिलता रहा, एतदर्थ उनका आभारी हूँ।

इस रचना में मेरा अपना कुछ भी नहीं, केवल त्रुटियां ही त्रुटियां मेरी हैं। दिव्य जीवन अमृतधारा तो स्वयं महाराजश्री की कृपा का फल है।

त्रुटियों के लिए विश्वास है प्रेमी पाठकों की श्रद्धा सुरसरि धारा में विलीन हो जाएंगी। अंत में उन्हीं पतितपावन गुरुचरणों में उन्हीं की वस्तु उन्हें समर्पित -

त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पये।
तुमहीं माई-बाप है, तुमहिं कुटुम परिवार॥
नैया बीच समुद्र में श्री गुरु जी लगैयो पार।
पावनतम गुरुचरण रज का याचक॥

-डॉ. राधारमण शर्मा
भागवत भवन, गणेशपुरा, मुरैना (म.प्र.)
फोन : 07532-222090
मो.:9993807504

*****
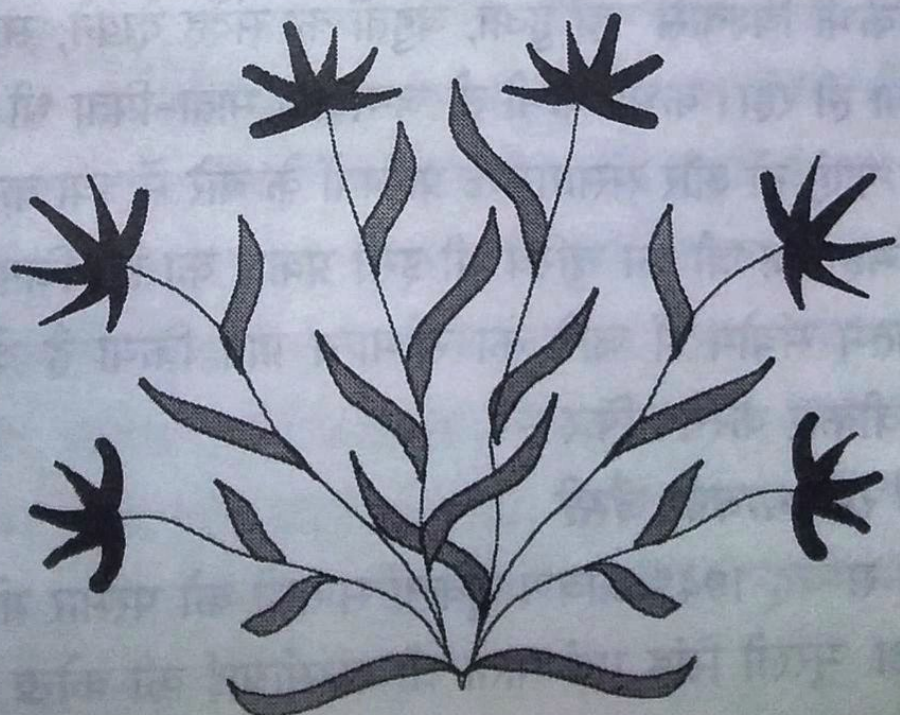
//श्री गणेशाय नमः//

प्राकट्य

कुले पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती चतेन।
स्वर्गे स्थिता स्ते पितरोपि धन्या येषां कुले वैष्णव पुत्र जातः॥

वह कुल परम पावन है, वह जननी धन्य है, और वह वसुन्धरा भाग्यशालिनी है, जहां पर भगवद भक्त, महापुरुष उत्पन्न हुआ हो अर्थात वैण्णव, सन्त या भक्त के जन्म से कुल पवित्र, जननी कृतार्थ एवं समग्र धरती पुत्रवती हो जाती है, क्योंकि सत्य, सदाचार, सद्धर्म, दान, दया, तप आदि जो धर्म का स्वरूप है या यों कहें धर्म ही प्रभु का रूप है। जब उसके रूप, धर्म पर अत्याचारी, दुराचारी, पापाचारी समस्त दिशाओं से आघात करते हैं, उसे छिन्न-भिन्न करते हैं, तब उन साधक-आराधकों की अन्तः पीड़ा से करुणा निधान ही स्वयं आहत् होकर उनके रक्षार्थ दौड़ पड़ते हैं। उनका वह रूप तत्कालीन देशःकाल की परिस्थितियों के अनुरूप होता है। उन्हें कोई संत कहे, भक्त कहे, भगवंत कहे, महापुरुष कहे उनमें अन्तर नहीं होता। ऐसे अवतारी महापुरुष के रूप संबंध में जब-जब उनका अवतरण हुआ, सभी को उस रूप में कभी विश्वास नहीं हुआ, बहुतों का संदेह देखने, समझने पर भी अंत तक बना ही रहा। कभी-कभी तो जन्मदाता माता-पिता भी ऐसे पुत्र को नहीं पहचान पाएं, तो और संसारासक्त प्राणियों के बारे में क्या कहा जाए।

हमारे महाराज जी का चरित्र भी इसी प्रकार का है। जिन सज्जनों को उनके पावनतम संयोग में जाने का सौभाग्य प्राप्त किया है वे इसे सत्य, परमसत्य, स्वीकार करेंगे। फिर -

जाकी रही भावना जैसी

विक्रम सम्वत् 1945 श्रावण शुक्ला सप्तमी को परमार गोत्रीय क्षत्रिय वंश में श्री ठा. मुरली सिंह एवं माता श्री लक्ष्मीबाई की कोख से विलक्षण

प्रतिभा संपन्न बालक का जन्म हुआ। सिंधिया वंश के नरेश की राजधानी ग्वालियर के पास नानी के घर छीमका को जन्मभूमि बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पिता श्री ठा. मुरली सिंह पुलिस विभाग में सिपाही थे। परिवार में एक पुत्री के अतिरिक्त था ही कौन ? माता-पिता एवं स्वजनों को क्षण-क्षण, पल-पल पर पुत्र मुख देखने की प्रबल उत्कण्ठा थी। माता-पिता परिजन ही नहीं, समस्त संबंधी भी जिसकी प्रतीक्षारत थे ? वही परम मंगलमय बेला आ गई। अड़ोस-पड़ोस, अगल-बगल के सभी आनंदमग्न हो गए। स्त्रियां, बुआजी के साथ सभी मंगल सूचक बाजे बजाकर जन्म के गीत गाने लगीं। प्रतीत हो रहा है मानो परावाणी में प्रणव का जन्म हुआ हो। माता लक्ष्मीबाई ने निहारा मानो चिदानंद-सुधा सरोवर में एक अत्यंत सुंदर, सुघर, सुहावना नील-सरोरुह खिल रहा हो। बुआजी ने कांसे की थाली बच्चे के कान के पास बजाई। दरवाजे पर गेरू का स्वास्तिक बनाया, थापे लगाए। द्वार पर शहनाई बज उठी। बालक का संस्कार कराया गया। पूरा वातावरण आनंद के सागर में निमग्न हो गया। माता एवं बहन उस घनीभूत आनंद को देवकी की भांति मनमोहन की मूर्ति को निहारती रह गई। बधाई बंटी। आनन्दोल्लास में शोभर के गीत गाये जाने लगे। पिताजी ने यथोचित संस्कार कराए। बालक की जिह्वा पर घृत के बिन्दु गिराए जिससे मेधा-वृद्धि संस्कार से बालक तीक्ष्म बुद्धि वाला होता है। तदनन्तर वेदोक्त मंत्रों द्वारा अभिमंत्रित किया हुआ विषम भाग में घी और शहद मिलाकर बालक को चटाया, जिससे बालक की कान्ति प्रकृति स्निग्ध उसकी वाणी मधु के समान मीठी हो। नाल छेदन आदि हुआ। उदारचित्त व्यक्ति को दान करने में पूर्ण प्रसन्नता होती है। ठा.सा. ने खूब दान दिया। मंगलघट, दूर्बा, अक्षत, धूप, लावा, नारियल, पुंगीफल, कदलीफल बतासा अन्यान्य मंगल सामग्रियां व्यवस्थित की गईं। हृदय खोलकर, कृपणता का परित्याग कर आनन्दोत्सव मनाया गया। लगभग सप्ताह पर्यन्त जन्मोत्सव मनाया गया।

*****

शैशव

रात्रि गमिष्यति भाविष्यति सुप्रभातम् भास्वानु देष्यति हसिष्यति पंकज श्रीः।
इत्थं विचारयति कोषगते द्विरेफे-हाहन्त हन्त नलिनी गज उज्जहार।

मनुष्य का मन सदा-सर्वदा मनसूबे ही करता रहता है। जाग्रत अवस्था की कौन कहे, सो जाने पर भी, स्वप्न में भी अनन्तानन्त कल्पनाओं के जाल में फँसा रहता है। अपने सुख समृद्धि की चिन्ता में सदा लवलीन। कभी विचार नहीं कर पाता। संयोग पाकर जो पछुआ हवाएँ वर्षा के द्वारा लोक के पाप-संताप को शांत करती हैं, वे ही शरद में शीतवात प्रसारिणी हो जाती हैं और ग्रीष्म आते-आते सारी धरा की हरियाली को झुलसा कर वीरान बना देती हैं।

भवितव्य क्या कराएगा, उसका विधान किसी से जाना नहीं जा सका। जिस पुत्र का मुख दर्शन करने के लिए देवकी ने अपने छह पुत्रों को बलिदान किया। जीवन भर कारागार की यातना भोगी, वह पल भर बाद ही माँ की ममता से मुँह मोड़कर गोकुल चला गया तदनन्तर शैशव में ही वहाँ से भी यशोदा के वात्सल्य को विलखता छोड़ कर मथुरा चला गया? यह सब अदृष्ट का ही अवश्यंभावी विधान है।

पिताश्री मुरली सिंह जी ने बालक का नामकरण आचार्य पंडितों से उत्सव के साथ मोहन सिंह सम्पन्न कराया। दूसरी ओर चिन्ताओं का चक्रवात आँगन में उतर पड़ा। अपने प्यारे, दुलारे बालक मोहन को अकेला छोड़कर मातुश्री संसार से चल बसीं। इस अभाव की पूर्ति किस प्रकार संभव है, विधि का विधान है। पिताजी शासकीय सेवा में पुलिस विभाग में सामान्य सिपाही थे, नौकरी एवं बालक का पोषण, संरक्षण, कैसे किया जाय। कुछ दिन कपड़े में बाँधकर पीठ पर बालक को लटकाए हुए नौकरी पर जाते रहे, किन्तु पुलिस सेवा का निर्वाह इस भाँति नहीं हो सका। उचित

रूप से देखभाल न होने से बालक रोगी हो गया। कहीं कोई सहारा नहीं दिखा। एकमात्र बहन थी, जिसका विवाह आरौन के समीप सियावारी में हो गया, उस समय बहुत सस्ता जमाना था। एक रुपए का पाँच सेर घी, बारह सेर तेल, एक मन गेहूँ, ढाई मन ज्वार, बाजरा मिलता था। कुल मिलाकर एक रुपए में महीने भर का घर, परिवार का गुजारा हो जाता था। बहन के बाद परिवार शब्द का कोई अर्थ नहीं रहा। ऐसा लगा मोहन अनाथवत हो गया किन्तु सन्त कहते हैं-

सन्त सगे अरु गुरु सगे अन्त सगे हैं राम।
परशुराम या जीव कूंतीर्नि ठौर विश्राम॥

अन्ततः सच्चे सम्बन्धी तो सन्त, गुरु और श्रीराम ही हैं, उस समय आँतरी में एक बहुत ही बूढ़े महात्मा श्री धरमदास जी के चरणों में प्यारे मोहन को डाल दिया। यथार्थ तो यह है, जो जिसकी निधि थी वह उसके पास पहुँच गई। पिताजी को और कोई उपाय नहीं सूझा। यह सन्त उनके सुपरिचित थे।

नारद जी के सुसंयोग एवं आशीष से जिस प्रकार ध्रुव, एवं प्रहलाद जी का स्वरू निर्मित हुआ, ठीक इसी प्रकार मोहन का समग्र अन्तस् बाबा महाराज श्री धरमदासजी की चरण-शरण में उनके धर्म विग्रह श्री रामजी की गोद में चला गया, पहुँच गया। तत्वतः जीवन का चरम लक्ष्य तो यहीं प्राप्त हो गया। बाबा का नियम था प्रतिदिन गीता का सम्पूर्ण पाठ हनुमानजी की परिक्रमा करते हुए सुनाते थे, अपने प्रभु श्री सीताराम जी के मंदिर में पूजा, अर्चना एवं हनुमान जी की आराधना यही उनका जीवन था, भगवन्नाम सदा चलता रहता था, मोहन का रूप भी तीन, चार वर्षों से पूर्ण रूप से वही बन गया, जो बाबा का था। बाबा के समस्त संस्कार इनके अन्तःकरण में आसीन हो गए।

पिताजी के मन में प्यारे मोहन को देखने की उत्कण्ठा हुई। बाबा के

समीप आश्रम में पहुँचे। बाबा के श्रीचरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत प्रणाम की। फिर बालक को देखा, तो देखते ही रह गए "जनु च चकोर पूरन शशि लोभा" पूर्ण स्वस्थ और सुन्दर थे, अब मन में ले जाने की इच्छा हुई। महाराज से प्रार्थना की, बाबा ने सहर्ष आज्ञा कर दी और अपना आशीष दिया। देखना मुरली सिंह बालक धर्म गुरु निकलेगा-

चन्द्रहीना यथारात्रिः पद्महीनं यथा सरः।
सत्यहीनं यथा वाक्यं साधुहीना यथा सभा॥
वृक्षहीनं यथारण्यं जलहीना यथा नदी।
तपो यथा दयाहीनं तथा मात्रा विनार्मकः॥

जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि, कमल के बिना सरोवर, सत्य से रहित वाणी, साधु, पुरुषों से रहित सभा, वृक्ष के बिना वन, जल के बिना नदी, दया के बिना तप शून्य है, उसी प्रकार बिना माता-पिता के बालक की दशा होती है।

बाबा महाराजश्री का तपःसार बालक मोहन पिताजी के साथ जहाँ उनकी नौकरी थी, पिछोर ले आए। पिताजी के मन में इनकी शिक्षा-दीक्षादि की चिंता होने लगी। उस समय जब मोहन को अक्षर ज्ञान भी नहीं था, तब तक हनुमान चालीसा कंठस्थ था, बाबा महाराज के यहाँ नित्य देखते रहे, यहाँ आकर छोटे-छोटे गोल-मटोल पत्थर इकट्ठे करलें, स्नान कराएँ, तिलक चन्दन लगाएँ, फूलमाला, फूल चढ़ाएँ, भोग लगाएँ, दण्डवत करें। हनुमान चालीसा सुनाएँ, यह सब देखकर पिताजी मुग्ध हो जाते थे।

श्री मुरली सिंह जी के परम मित्र पं. ग्यासीराम जी थे। वे ही इनको पढ़ाने लगे। मोहन की प्रतिभा इतनी विलक्षण थी कि दूसरे दर्जे में जाने से पहले सुन्दरकाण्ड कंठस्थ हो गया था। इसके लिए उन्हें कभी-कभी सजा भी भोगनी पड़ी। पिताजी हाथ ऊपर कर दीवार की खूँटी पर टाँग देते थे। कभी-कभी रोना भी पड़ा। इनके मुख से सुन्दर काण्ड एवं हनुमान चालीसा

सुनकर पिताजी प्रसन्न हो जाते थे। नित्य दो पैसे देते थे। उन दिनों एक पैसे की शुद्ध घी की पावभर जलेबी, एक पैसे में पावभर मीठा दूध मिलता था। कुछ दिनों में शरीर एकदम गोल-मटोल बहुत सुन्दर हो गया।

पिछोर में ही थाने के पास एक टूटी पुलिया थी, एक दिन दूध, जलेबी लेकर आ रहे थे। वहीं पर धर्मशाला के टूटे भाग से एक चुड़ैल आई, और बोली- जलेबी हमें भी दे दो- पहले से ऐसा सुनते आए कि यहाँ किसी ने कोई मैया मार दी थी। वह चुड़ैल बन गई है। छोटी अवस्था डर गए, चिल्ला पड़े, तुम्हें कैसे दे दें? क्षणक्षर में ही सामने एक भंयकर रूप देखते ही किलकारी मार कर रो पड़े। जलेबी नीचे गिर गई। बड़े जोर का बुखार चढ़ा। पंडित ग्यासीराम जी ने हनुमान चालीसा सुनाते हुए मोर पंख से झाड़ा, किसी प्रकार ठीक हो गए। दो चार दिन भयभीत से रहे, तत्पश्चात् सब यथावत चलने लगा, समस्त कष्टों का निवारण हुआ। चार वर्ष का समय वहीं पिछोर में गुजर गया। शरीर एवं स्वास्थ्य में सुधार आया, उस समय ही स्वभाव में भी गम्भीरता आ गई।

*****

शिक्षा

शिक्षा पूर्वाः सर्व धर्मा मनोरथ फल प्रदा।
शिक्षया साध्यते सर्वं शिक्षया तुष्यते हरिः॥

समस्त कर्म एवं धर्म, शिक्षा पर ही आधारित हैं। शिक्षा ही समस्त मनोरथ सफल करती है। लोक-परलोक की साधना भी सम्पूर्ण सफलता के साथ शिक्षा पर ही अवलंबित है। अपनी और लोक की प्रसन्नता के साथ-साथ शिक्षा भगवान को भी प्रसन्न करने वाली होती है। अतः वेद

कहते हैं-

"विद्ययाकृत मश्नुतेन" तथा सा विद्ययाविमुक्तये॥

संस्कारों में शिक्षा सर्वोपरि है, जो समग्र जीवन को आनन्दमय बनाती है। मोहन का विद्याध्ययन आँतरी में प्रारम्भ हुआ। प्राथमिक शिक्षा यहीं सम्पन्न हुई, मिडिल पास यहीं से किया, इसी बीच दुर्भाग्य का दूसरा चरण आ गया।

पिताश्री भी परलोकवासी हो गए, केवल श्री रामजी का स्मरण ही इनका एक मात्र अवलंब रह गया। ग्वालियर नवग्रह मंदिर पर आकर रहने लगे, अध्ययन एवं रामानुराग निरंतर विकासोन्मुख रहा। शिक्षा को भी अपने हृदयेश्वर श्रीराम से संयुक्त कर दिया। पढ़ें तब बराबर सम्पुट चलता रहे-

गुरु गृह पढ़न गए रघुराई। अल्पकाल विद्या सब पाई॥

परीक्षा समय आने पर सम्पूर्ण आधार मात्र इस अवलम्ब पर आ गया-

"मोरें हित हरि सम नहि कोऊ।
यहि अवसर सहाय सोइ होऊ॥"

भोजन भी यहीं था, बाल भोग भी यहीं, वस्त्र भी यहीं, इनका निरन्तर स्मरण, रटन सर्वस्व बन गया। उस समय विक्टोरिया कॉलेज जिसका नाम वर्तमान में महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर महाविद्यालय है, में परीक्षा केन्द्र था, लगभग छः सौ विद्यार्थियों में सर्वप्रथम स्थान प्राप्त किया। अंक गणित एवं रेखा गणित में 100 में 99 अंक मिले। विशिष्ट प्रतिभा प्राप्त की। सम्मान पदक मिला।

संयोग ऐसा आया कि यह धारा यहीं पर रुक गई। परिस्थिति ने पलटा खाया।

"तेरे मन कछु और है, कर्ता के कछु और।"

अपना प्रयास, अपनी करनी, भवितव्य के सामने कुछ भी काम नहीं आते। सारी आशाओं को हृदय के किसी कोने में दबाए हुए, सोचा भी

नहीं था, बहन के यहाँ (स्यावरी) सियावारी आना पड़ा। कुछ समय तक वहीं पर गाय, भैंस चराते रहे। प्रभु की लगन हृदय से दूर नहीं थी। अतः किसी भी स्थिति में विचलन या दुःखानुभूति नहीं हुई, करते तो क्या? कथा, सत्संग, भगवन्नाम जब जहाँ सुलभ होता, वहां चले जाते, बहन के घर सेवा भी यथा शक्ति करते रहे। किशोरावस्था का सम्पर्क यहाँ तक रहा। लगभग दो या तीन वर्ष यही क्रम चलता रहा।

जैसे गंगाजी हिमालय से निकलकर कल-कल निनाद करती हुई अनेक प्रकार के देश, संग, क्षेत्रसंग, पदार्थ संग, भले बुरे के विचार से सर्वथा असंपृक्त, न बिछुड़ने का दुःख न किसी संयोग का सुख, निरन्तर प्रवाहमान रहकर लोक के पाप, संताप, दूर कर रही हैं। महापुरुष भगवद् भक्तों की भी ऐसी ही रहनी होती है। किसी संयोग का सुख, वियोग का दुःख उन्हें नहीं छू पाता, उनका हरिप्रेम में डूबा हुआ अन्तस हर देशकाल क्रिया में उन्हीं से संयुक्त रहता है। अपने उस समय में दोनों ही कुयोग-सुयोग बनते रहे, सब कुछ करते कराते योग से तत्कालीन तहसीलदार शंकरराव प्रभावित हुए, उनके यहां आ गए। चार वर्ष तक अध्ययन, हरिनाम संकीर्तन कथाक्रम चलता रहा, आरौन ही रहे। उस समय वहाँ विद्यालय में चालीस ब्राह्मण बालक पढ़ते थे। सभी भस्मी लगाते थे। व्यवहार में संस्कृत ही बोलते थे। भूलबश कोई विद्यार्थी हिन्दी बोल जाए, तो गोबर डालने की सेवा करनी पड़ती थी। तत्कालीन सिंधिया नरेश महाराज माधौराव सिंधिया ने सौ बीघा जमीन आश्रम के सेवार्थ लगा रखी थी। समीप ही 'धौंहा' नाम के गाँव में भी ऋषिकुल की संस्था चलीं। नियम था, प्रत्येक घर में माता चक्की चलाएँ, एक चुटकी आटा आश्रम को देय रखती थीं। नियमानुसार विद्यार्थी माँगकर ले जाते, उससे आश्रम की सेवा होती थी।

'उसी समय लाला बाबा' नाम के सिद्ध सन्त जो निरन्तर रो रोकर 'विनय पत्रिका' का पद गाते रहते थे, से आप प्रभावित हुए।

रामकहत चलु, रामकहतचलु, रामकहत चलु भाई रे...

अपने इष्टदेव श्री हनुमान जी से एक लाख रुपया माँगा। बाबा महाराज की सेवा में ग्वालियर में परिवहन का हर अधिकारी एक रुपया महीना, हर सिपाही चार आने महीना देता था, कोई व्यापारी तेल, कोई नमक, कोई आटा, कोई गुड़, कोई अपनी अन्य-अन्य सेवाएँ देते थे। ऋषिकुल अच्छी प्रकार चलता था।

संयोग से अध्ययन काल में किसी के मुँह से गांधीजी का नाम निकल गया, तो ग्वालियर नरेश ने श्योपुर जेल में पहुंचा दिया। बाबा महाराज ने अपने इष्ट हनुमान जी से रातभर प्रार्थना की, सारी पल्टन बदल गई, महाराज माधौराव को सोते में नीचे फैंक दिया। उन्हें सुनाई पड़ा। तुमने एक निरपराध महात्मा को जेल में पहुंचा दिया है। छोड़ो उसे। दूसरी ओर पूरा आश्रम एवं नगर निवासी अनशन पर चले गए, लाला बाबा नहीं आएँगे तो कोई काम नहीं होगा। सहसा माधौराव स्वयं गए और बाबा को लाए। भागवत के प्रकाण्ड विद्वान थे। लगभग दो सौ से अधिक श्रीमद् भागवत कथाएँ उन्होंने कहीं। निरन्तर हरिचर्चा उत्सव चलते ही रहे। स्वयं के पास सिर्फ एक तूंबी और एक लंगोटी, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई संग्रह नहीं रखते, न करते थे। लश्कर में आज भी लाला बाबा की बगीची है, जहाँ आपने पर्याप्त कथा, सत्संग किया। बाबा का आशीर्वाद अनुराग प्राप्त किया, पूर्ण प्रतिभा प्राप्त की। अब मोहन की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

उनकी अलौकिक बाल-प्रतिभा संत विद्वानों को आकर्षित करने लगी।

*****

श्री श्री 1008 बाबा रामदास जी महाराज करह सरकार
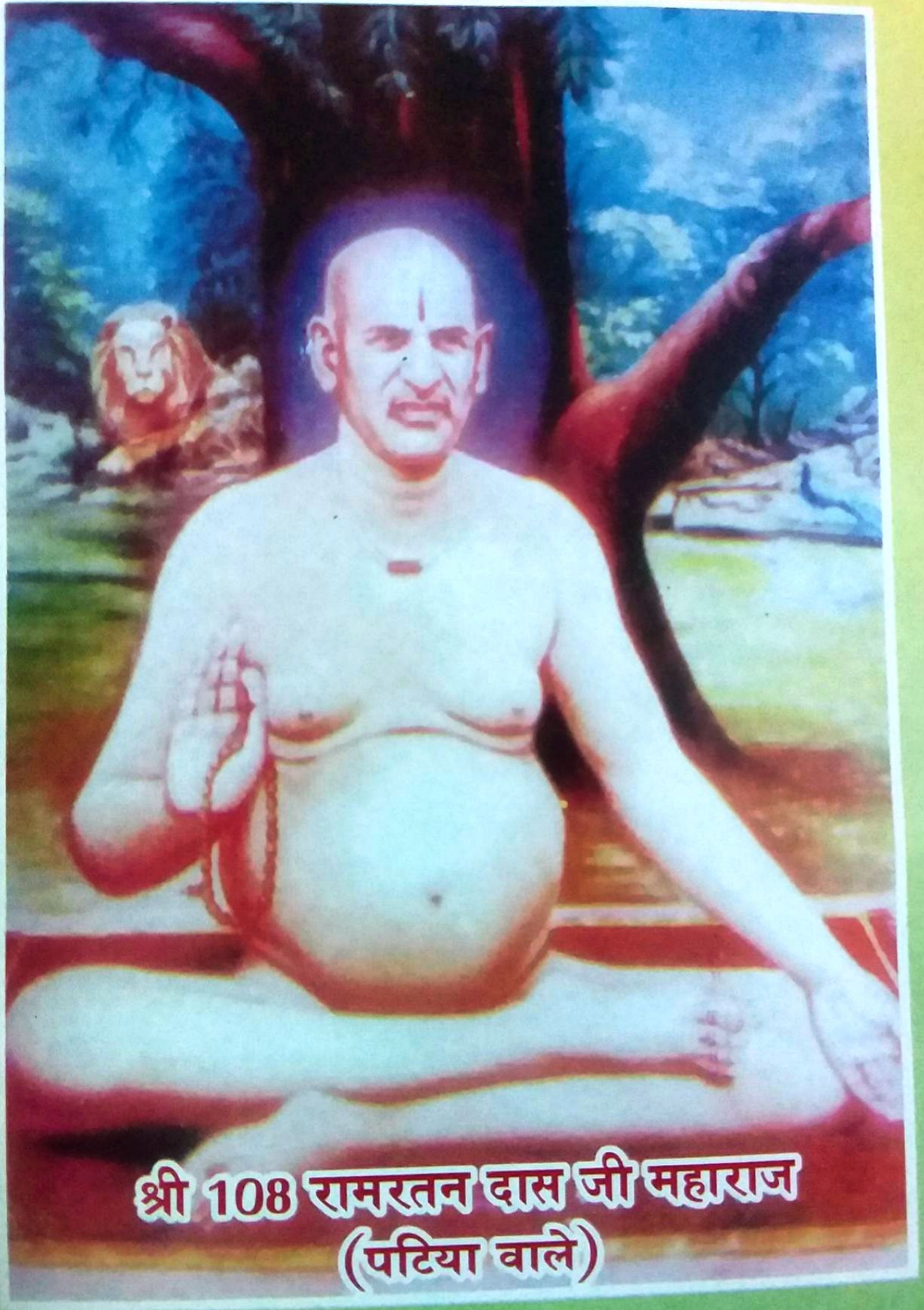
श्री 108 रामरतन दास जी महाराज
(पटिया वाले)

शासकीय सेवा

सवै सत्कर्मणां लोके यस्मात् तुष्यते हरिः।
आत्म कल्याण मूलंतुजगन्मंगल कारकः॥

जो कर्म अपना और अपनों का कल्याण करते हुए, जगत-कल्याण एवं मंगल की स्थापना करता है, उसी का नाम कर्म है। भगवान भी उसी से प्रसन्न होते हैं।

कर्म की विविध मीमांसा शास्त्रों में वर्णित है। गीता में स्वयं श्रीकृष्ण बार-बार अर्जुन को कर्तव्य कर्म करने की प्रेरणा देते हैं, अपना कल्याण अपना कर्म करने में ही है। कर्तव्य करते हुए प्राण त्याग करना ही अनन्त यज्ञादि सत्कर्मों से श्रेष्ठ कहा गया है।

गोस्वामी तुलसीदास जी अपना अभिमत देते हुए कहते हैं-

सो सबु करम-धरम जरिजाऊ।
जहँ न राम-पद पंकज भाऊ॥

भगवानिष्ठ सन्त जीवन में अपने आचरण से कर्म की ऐसी पावन प्रतिष्ठा करते हैं जो समस्त लोक कल्याण को अपने में समाहित किए रहती है।

आपमें यह योग्यता समग्र रूप से आश्रित सी हो गई।

मोहन संयोग पाकर शासकीय सेवा में नूराबाद जहाँ जिले की कचहरी लगती थी, आ गए। उस समय मण्डल कुन्तलपुर था, तत्पश्चात् तवरघार बना, बाद में वहीं मयूरवन के नाम से जिसका नाम आज मुरैना है के रूप में आ गया। सर्व प्रथम अर्जीनवीसी की, पुनः दफ्तरदार की पदोन्नति हुई। संवत् 1974 वि. से सं. 1979 विक्रम तक उस पद पर रहकर इसी वर्ष में नाजिर बन गए।

तत्कर्म हिरतोर्ज्यं यत्साविद्या तन्मतिर्यथा।

तद्वर्ण तत्कुलं श्रेष्ठं तदाश्रमं शुभम् भवेत॥

जिस कर्म के द्वारा हरि भगवान संतुष्ट हों वास्तव में वही कर्म कहा जा सकता है। जो कर्म बन्धन से मुक्त कर दे और जो भगवान के चरणों में 'रति' उत्पन्न कर दे वही सच्ची विद्या है तथा जिस वर्ण,जिस कुल और जिस आश्रम में रहकर भगवन्नाम कीर्तन करने का सुन्दर सुयोग प्राप्त हो सके,वही वर्ण, वही कुल और वही आश्रम वन्दनीय है।

उस समय शासकीय सेवा का रूप भी नौकरी का था, अन्यथा उससे जो वेतन मिलता था उसे माँगने वाले भिखारी और तपसी जी की सेवा में लगा देते थे,नूराबाद के प्रेमी जिन्होंने देखा,वे कहते हैं कचहरी से मन्दिर तक माँगने वाले भिखारियों की लाइन उनकी प्रतीक्षा में बैठी रहती थी। किसी दिन अगर पैसे न होते, तो मोहन ऐसी लीला करते कि अपने साथी अधिकारी एवं कर्मचारियों को लोटा, बाल्टी, कपड़े जान-मानकर तपसी जी की गुफा के सामने जो कुइया थी। जिसमें पच्चीस हाथ पानी भरा हुआ था, उसमें डाल देते थे। मित्र अगर उन वस्तुओं को माँगते तो मोहन बोलते लाओ दो रुपये अभी लाते हैं, इतने गहरे पानी में निर्भय होकर कूदकर सामान निकाल देते थे, पैसे लिये उन्हें भिखारियों को बाँटा, तपसी जी के चरणों में रखा।

हनुमानगढ़ी के सामने के खेतों में जिनमें तपसी जी की फुलबाड़ी थी। उसमें दो सौ बाल्टी कुएँ से खींचकर प्रतिदिन बगीचे को सींचते थे।

रात्रिभर तपसी जी की सेवा करते थे, ऐसा परम विचित्र शासकीय सेवा का रूप।

नूराबाद मन्दिर पर सिद्ध सन्त श्री तपसी जी महाराज विराजते थे। उनके सन्दर्भ में स्वयं श्रीमुख से सुनाया, तपस्वी तो थे ही, उन्हें कभी किसी ने भोजन करते नहीं देखा। रातभर मन्दिर के नीचे गुफा में धूनी पर भजन करते रहते थे, प्रातःकाल उसी धूनी में एक सेर आटे का टिक्कर लगाकर

निकलते थे, रात्रि को आरती-दर्शन के पश्चात् उसी गुफा में जाकर उसी टिक्कर को पा लेते थे। आँखें एकदम सुर्ख लाल रहतीं थी। देखने में बड़ा भय लगता था। रात्रि को उन्हीं की सेवा में पहुँच जाते थे, उन्हें रामायणजी सुनाते, भगवन्नाम कीर्तन करते, उनकी चरण सेवा करते उनके हाथ हमारी जाँघ के बराबर मोटे, बड़े, लम्ब-तड़ंग। कथा सुनकर सेवा के पश्चात् गद्गद् होकर कहते थे, आगे देखना जगत को मोह लेगा। मुरली मनोहर मदन मोहन श्यामसुन्दर के बाद अब तेरा ही रूप भुवन मोहन, जनमोहन, प्रभुमोहन होगा।

एक अनाथ ब्राह्मण बालक कामतानाथ उस समय सम्पर्क में आ गया, क्रमशः आकर्षण बढ़ गया। मोहन की राय से उसे एक पटवारी ने पोषण दिया, इन्होंने पढ़ाया-लिखाया, सत्संग भी दिया, दुराचारी से सदाचारी बना दिया, वह नायब बनवा दिया। समाज में बड़ी प्रशंसा हुई। इस प्रकार परमार्थ और सन्त सेवा में ही मोहन की मासिक नौकरी की आय जाने लगी। तपसी जी महाराज का अनुराग बढ़ता गया, उनकी आस्था भी उतनी ही अचल हिमालय के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। एक ओर शासकीय सेवा से खिन्नता होने लगी, सन्त सेवा और रामायण, रामनाम संकीर्तन यही जीवन बन गया। तभी नूराबाद से कचहरी बदलने के आदेश आए, किन्तु तपसी जी महाराज कहते थे-जब तक हम रहेंगे माधौराव का बाप मर जाय कचहरी मुरैना नहीं जायेगी। वस्तुतः हुआ भी यही, जब तक तपसी जी महाराज वहाँ रहे, तब तक (कोर्ट) कचहरी मुरैना नहीं आई।

संवत् 1980 वि.में कचहरी मुरैना आई , मोहन भी अब नाजिर हो गए ,अहलकार के ओहदे पर आसीन हुए , तब तक इन्हें तो संत संग, रामकथा के सम्पर्क में यह सब शासकीय सेवा एवं वह जीवन असह्य हो गया। छटपटाने लगे। कब कैसे छूटें । योग बना और सहज ही यह सब छोड़ दिया और जो सन्त संस्कार दृढ़ बन चुके थे, वही एक मात्र लक्ष्य रह गया। चल पड़े उसी ओर।

*****

लक्ष्य की ओर

स्नेहः स्वप्नेऽपि दुःखंवा सुखंवान विचार्यते।
पतंगोदीपकं दृष्टवा निजमृत्युं न पश्यति॥

प्रेम का स्वभाव है, वह कभी भी अपने प्रियतम को छोड़कर कभी किसी दूसरे को नहीं देखता। भविष्य में सुख आएगा या दुःख, इसकी उसे कोई चिंता नहीं होती। संसार क्या कहेगा? स्वप्न में भी विचार नहीं करता? उसकी लगन तो एकमात्र अपने प्यारे से लगी है। जगत भी उसे उसी का रूप दिखलाई देता है।

प्रकृति में हम देखें, मृग हमेशा ऊपर की ओर ही उछाल भरता है बाराह प्रयोजन न होने पर भी धरती को थूथड़ से खोदता है। मनीषी कहते हैं इसका कारण वे अपने अंशी से बिछुड़ गए हैं। अतः उससे मिलने उधर ही ताकते हैं। हिरण का अंशी चन्द्रमा है। अतः उसकी दौड़ ऊपर की ओर है, बाराह का धरती लाने अपने अंश का ध्यान है, उसकी प्रकृति है अतः वह भूमि को खोदता है।

मृग उछरत आकाशकों भूमि खनत बाराह।
जो जा के हिरदे रहे ताह, ताहि की चाह॥

तो जिसके हृदय में जिसकी प्रतिष्ठा हो जाय, उसका हृदय उसी के संलग्न हो जाता है। विश्व उसी का दर्शन है। आँख की पुतली भी वही है। जिह्वा भी वही है, कान भी वही हैं।

कम्मोदिनि जल में रहे चन्दा रहै आकाश।
जौ जाके हिरदे रहे ताह, ताहि की आस॥

कुमुदिनी जल में, चन्द्रमा आकाश में किन्तु रात भर प्यारे के दर्शन से पलक नहीं टालती।

बन्धन का हेतु ममत्व है। ममत्व का सम्बन्ध मन से है, जिसने ममत्व

को मन से निकाल दिया, वह तो नित्य मुक्त ही है। उसके लिए न कोई अपना, न कोई पराया वह तो अनेक रूपों में एक ही आत्मा को चारो ओर देखता है, फिर वह संकुचित सीमा में अपने को आवद्ध नहीं रख सकता। श्री तपसी जी के सत्संग का प्रभाव मोहन पर इतना सुदृढ़ हो गया कि लक्ष्य केवल यही एक प्रभु और गुरु प्रेम रह गया, जो ले चला मुकाम की ओर अब जगमोहन दिन की सेवा इधर करें, रात्रि को करह जाकर रामायण कथा सुनाने लगे। अवकाश का पूरा दिन करह पर ही श्री बड़े महाराज जी की सेवा, कथा एवं कीर्तन में व्यतीत होने लगा। लगभग एक वर्ष से अधिक समय यही क्रम रहा। 'दिव्य जीवन' में आचार्यचरण रामजी शास्त्री जी ने भी यही उल्लेख किया है।

जगमोहन की वाणी सचमुच बड़ी ही मोहक थी, मधुर कण्ठ से जब उच्च स्वर में रामायण की चौपाइयाँ वे गाते तो बड़े महाराज जी इतना फूट-फूटकर रोने लगते, आँखों से आँसू झरने की भाँति बहते, तब जगमोहन रामायण गान बन्द कर देते थे, तब श्री बड़े महाराज जी बड़ी करुणामयी वाणी में अनुनय करते एरे जगमोहन। अरे भैया! थोड़ी और कथा कह। मोहन कहते हैं- आप इतना अधिक रो पड़ते हैं कि हमारा जी घबरा जाता है। तब श्री बड़े महाराज जी कहते - अरे नहीं भैया! रघुनाथ जी के चरित्र ही ऐसे हैं, जिन्हें सुनकर, सहज रोना, फूट पड़ता है। थोड़ा और कहो-थोड़ा और कहो। श्री बड़े महाराज जी के आग्रह पर वे पुनः कथा कहने लगते।

साँक रेल्वे स्टेशन पर बीकेन बाबू स्टेशन मास्टर, रामायण के बहुत प्रेमी, उनके यहाँ श्री बड़े महाराज जी ने रामकथा सुनी। बनवास प्रसंग पर हूक फूट पड़ी, सहसा मुंह से निकला- राम जी आप तो चले गए, हमसे कुछ नहीं कह गए। दो दिन मूर्छा में उसी तरह पड़े रहे, जगमोहन बेचैन। क्या करें? प्रभु ने उपाय सुझाया श्री रामकथा राजतिलक कीर्तन बड़े उच्च स्वर से गाया, महाराज जी स्वस्थ हो गए। भैया रामजी आ गए। इस राम प्रेम

के जादू ने जगमोहन के जीवन को पूर्ण प्रभावित किया। अब यहाँ से आगे का जीवन यही रहने लगा। नौकरी नाम मात्र को रह गई। पूरा समय रामकथा कीर्तन आदि में जाने लगा। जौरी ग्राम में सालिगराम दाऊ रामलीला करते थे। उसे आपने पूर्ण रूप से, तन, मन, धन की सेवा से संचालित किया। लीला में इतनी निष्ठा पैदल नित्य जाना, लीला करना, रात्रि में ही लौटना लीला स्वरूपों की सेवा बड़ी निष्ठा से करते रहे।

सम्वत् 1980-81 में हरिद्वार का कुम्भ आ गया, उसमें एक महीना पूर्व ही श्री वृन्दावन धाम में सन्त समागम बैठक हुई। जगमोहन वहीं पहुँचे। एक महीने तक सन्त संग का लाभ उठाया और जब सन्त कुम्भ में पहुँचे तो आप भी उन्हीं के साथ वहीं चले गए, निरन्तर डेढ़ महीने तक सन्त दर्शन, सत्संग का लाभ उठाया। पूरे कल्पवास, गंगा स्नान, वहां परमभाव सम्पन्न दिव्य कथाएँ, लीलाएँ, देखीं, सुनी। हृदय में वैराग्य भावना तथा प्रभु के प्रति उत्कट भावना दोनों प्रबल हुई। संयोग से उसी समय महंत श्री रघुवीरदास जी की जमात मुरैना आई, लगभग पाँच सौ साधू साथ में थे। उस समय मुरैना कलेक्टर दत्ता जी राव थे, श्रद्धा रखते थे, सेवा भी की। ठा. श्री कदमसिंह नायकपुरा वाले एवं उनके प्रभाव से औरों ने भी सन्त सेवा की। ठा. सा. स्वयं झाड़ू लगाते थे। बड़े वैभवशाली एवं तपस्वी महात्मा थे। उन्हीं के साथ कथा कीर्तन करते रहे। संयोग से पुनः नूराबाद आ गए, लश्कर गए, फिर नूराबाद आ गए, श्री प्रभु कृपा हुई पुनः श्री धाम वृन्दावन पहुँचे, सन्त सेवा तो करते थे। मदन मुरारी मोहन ने कृपा की। एक सन्त ने इन्हें एक शेर सुनाया-

"क्या कतरे तुझमें आव नहीं, नाचीज न बन आला बनजा।
निकल सदफ की जुल्मत से, तूलूलू से लाला बन जा॥"

अर्थात् अरे! कतरे अर्थात् ईश्वर के अंश, तू नाचीज क्यों बनता है। निकल। लूलू (सीप) लाला (मोती) बनजा अर्थात् गुरु की शरण चला यदि

ऐसा कर लेगा, तो स्वाँति बूँद (लूलू में) अपने स्वरूप से (लाला) प्रभु बन जा।

सन्त की वाणी ने जगमोहन के हृदय को प्रभावित किया। गुरुदेव की कृपा ही लूलू से लाला बन सकेगी, यह सब व्यर्थ है। सब कुछ छोड़छाड़ कर निकल पड़े उस परम तत्व की ओर। शरीर और नौकरी दोनों से ममत्व सर्वतः सर्वथा को चला गया।

अब तो जिस रंग में प्रहलाद जी को साँप, विष, बिच्छू, अग्नि, समुद्र आदि में जो भक्त वत्सल दिखते रहे, अंग लगाते रहे, मीरा जिस पर बलिहार हो गई, जिसकी पुतली ही माधव बन गई, वही भाव, वही निष्ठा, वही रूप जगमोहन के रोम-रोम में प्रतिष्ठित हो गया। लगी लगन उस सीमा तक ले गई।

धरत कहूं पग परत कहूं जाहि सुधि नहि छाया धाम की।
नारायण बौरी भई डौले रही न काहू काम की॥

अन्तरात्मा उस परमप्रिय प्रभु से मिलन की तड़प को लेकर निकल पड़ी- इसे भक्तवत्सल की करुणा न कहें या प्रेमास्पद का सम्मोहन। मीमांसा में माया के तीन रूप हैं- 1. भुवन मोहिनी, 2. भक्त मोहिनी, 3. भगवान मोहिनी।

प्रथम जो संसार को मोहे, दूसरी जो भक्तों को मुग्ध करे, तीसरी वह जो प्रभु को मोहित करे। मोहन सिंह थे, किन्तु तपसी जी महाराज की सेवा, सत्संग, कथा, कीर्तन से, दान से सम्मोहित किया। उन्हीं ने कहा जा -जग को मोह लेगा। जगमोहन हो गए। अतः इस मोहन की विद्या माया से तपसी जैसे सिद्ध मुग्ध हुए, मोहन को भक्त बना गए। आगे भगवान की ओर यही धारा गंगा प्रवाह की तरह अनवरत चल पड़ी। भगवान ही हैं, और कहाँ ठिकाना। परिणाम में हनुमान जी की कृपा से उनको और रामजी को मुग्ध करने में समर्थ हुए। तपसी जी का आशीष सफल हुआ।

*****

गुरु चरणों में

"प्रियान्नसं भवेदुःखं मप्रिया दधिकं भवेत्।
ताभ्यां हिते वियुज्यन्ते नमस्तेषां महात्मानाम्॥"

संसार को देखें, तो इसमें खोजने से सभी प्रकार के व्यक्ति मिल सकते हैं। परोपकारी पुरुष यद्यपि थोड़े ही होते हैं किन्तु वे खोजने से मिल जाते हैं। भूखों को अन्न देकर तृप्त करने वाले, प्यासों की पिपासा को, प्याऊ, कुएं, तालाब आदि बनवाकर जलदान करने वाले भी मिल जाते हैं। अपने धन से अध्यापक रखने वाले, विद्यार्थियों को विद्यादान करने वाले पुण्यात्मा भी पृथ्वी पर सर्वत्र पाए जाते हैं। बेसहारा, सब तरह से विवश, रोगियों की, चिकित्सा करना, धर्मार्थ दवा, वस्त्रादि देकर दुःख दूर करने वाले दयावान भी मिल जाते हैं किन्तु ज्ञान के उपदेश द्वारा हृदय में बैठे हुए समस्त संशयों का मूल नाश होना गुरुदेव के बिना मिले सर्वथा असंभव है। वे जितात्मा, सत्यवादी महात्मा धन्य हैं जिन्हें न प्रिय की प्राप्ति में सुख होता है और न अप्रिय की प्राप्ति में अधिक दुःख, व्यथा ही होती है, जिनकी वृत्ति सुख-दुःख में समान रहती है, ऐसे महात्माओं के चरणों में
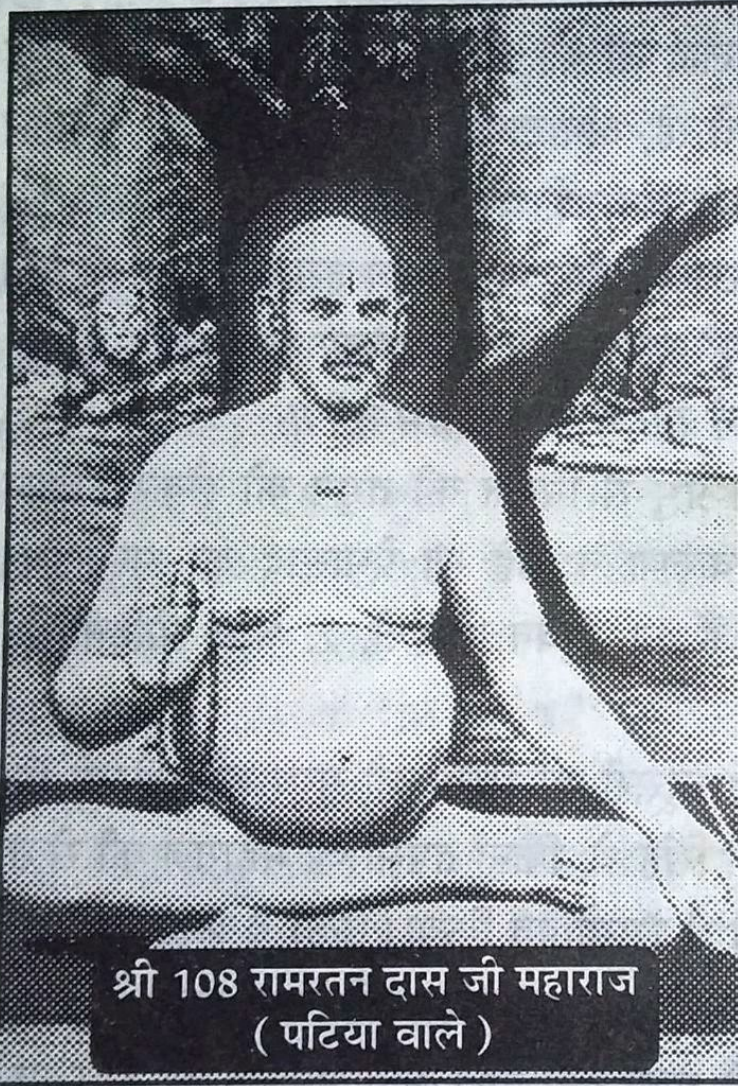
श्री 108 रामरतन दास जी महाराज
(पटिया वाले)

बार-बार प्रणाम है। उसी परम तत्व का नाम गुरु है। वे ही गुरुदेव इस संसार सागर में डूबते हुए निराश्रित जीवों के एकमात्र आधार हैं। गुरुदेव ही बहते हुए, डूबते हुए, बिलखते हुए, अकुलाते हुए, बिलबिलाते हुए, अचेतन हुए जीवों को भववारिधि से बाँह पकड़कर बाहर निकाल सकने में समर्थ हैं, हो सकते हैं। त्रैलोक्य पावन गुरुदेव की कृपा के बिना जीव इस अपार दुर्गम पयोधि के पार जा ही नहीं सकता। वे अखिल विश्व ब्रह्माण्डों के विधाता, विश्वम्भर ही भाँति-भाँति के रूप धारण करके गुरु रूप में जीवों को प्राप्त होते हैं, और उन्हीं के पाद पद्मों का आश्रय ग्रहण करके मुमुक्षु जीव बात की बात में इस अपार उदधि को तर जाते हैं। किसी भी मनुष्य की सामर्थ्य ही क्या है जो एक भी जीव का वह निस्तार कर सके। जीवों का कल्याण तो वे ही परम गुरुदेव श्री हरि ही कर सकते हैं। इसलिये मनुष्य गुरु हो ही नहीं सकता। जगद्गुरु तो वे ही श्री मन्नारायन हैं, वे ही जिस जीव को संसार बंधन से छुड़ाना चाहते हैं, उसे गुरु रूप में प्राप्त होते हैं। अन्य साधारण जीवों की दृष्टि में बह रूप साधारण जीवों की भाँति ही प्रतीत होता है, किन्तु जो अनुग्रह दृष्टि के जीव हैं, जिन्हें वे श्री हरि स्वयं ही कृपापूर्वक वरण करना चाहते हैं, उन्हें उस रूप में साक्षात् की सनातन पूर्ण बृह्म के दर्शन होते हैं। गुरु भक्त और भगबान ये मूल में एक पदार्थ के लोकभावना के अनुसार तीन नाम रख दिए हैं। वस्तुतः इनमें कोई अन्तर नहीं। 'भक्त, भक्ति, भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक' इस भावना को अनुग्रह सृष्टि के ही जीव समझ सकते हैं, और के बश की बात नहीं है।

जगमोहन तो हृदय प्रधान थे। उन सन्त की वह वाणी, रह-रहकर बार-बार उनके हृदय को कचोटने लगी। गुरुदेव की शरण जाएगा, तो लूलू से लाला, स्वाति मोती बन जाएगा, इतने प्रभावित हुए कि जो कोट-बूट-शूट पहने थे, वहीं पर उतारकर दूर फेंके। कमीज फाड़कर लँगोटी लगा ली। चलकर हरिद्वार कुम्भ में आए, वहां श्री नारद जी के दर्शन हुये- वह

सन्त बैठे थे। इतना सुन्दर और तेजस्वी स्वरूप पहले कभी नहीं देखा। उनके शरीर के समस्त बाल बिल्कुल सुनहरी रंग के थे। अवस्था अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष की होगी। हमारी (श्री जगमोहन जी की) उम्र अधिक थी उनके दर्शन से हृदय फूट पड़ा। रोकर चरण पकड़ लिये। आँखें खोलकर देखा सामने कोई नहीं। व्याकुलता बढ़ गई। खाना,पीना भूल गए। पूरे मेले में तीन दिन तक देखा, परन्तु फिर उनका दर्शन नहीं हुआ। अन्तः प्रेरणा हुई। स्वतः ही नाई से बालों को उतरवाया, मुण्डन कराया स्नान किया और चल पड़े। कमीज से फाड़कर जो दो लँगोटी बनाई, एक पहने हुए और एक हाथ में। इतना ही शरीर पर था। शेष सब चला गया। वहीं कुम्भ मेले में चित्तौड़गढ़ के एक महात्मा रामलीला कर रहे थे, वे जगमोहन को देखकर बहुत प्रभावित हुए। यह भी हुए। रामलीला में पहले से ही रुचि तो थी ही, उन्होंने साथ रखा, राम का स्वरूप बनाया। उनकी माँ रोटी बनाकर भोग प्रसाद देती रहीं। पूरा कल्पवास हुआ, रामलीला हुई। परस्पर प्रेमस्वरूप में वृद्धि हुई। कभी-कभी वे महात्मा कहा करें-

''तोई मोई कुरू। तू चेला मैं गुरू॥''

कुम्भ मेला पूरा हुआ। वे चित्तौड़गढ़ पधारे, तो जगमोहन जी को भी साथ लेते गए। यहाँ हरिद्वार वे जब तक विराजे, तो फलाहारी बनकर रहे, वहाँ पहुंचकर चने की सब्जी, दाल, पूड़ी- सब्जी सब खाने लगे जो अपने को फलाहारी कहते थे। उन्हें झूठ बोलते देखा तो मन उचट गया। यहाँ से चल दिये, मंदसौर आए। मन्दसौर से उज्जैन आ गए। गुरु का शोध चल रहा था, मंदिर दर्शन करने के उपरान्त क्षीरसागर में एक बैंच पर सो गए, रात में किसी ने उठाकर नीचे रख दिया, मन में बड़ी चिंता हुई, दो दिन हो गए खाने को कुछ मिला नहीं। संयोग से एक कृपानाथ आए, दोनों हाथों में ग्यारह-ग्यारह लड्डू दिये। पाकर बड़ी शान्ति मिली। वहाँ से भोपाल आए। कमाली हनुमानजी पर रुके। रात को कथा सुनाई। उस रात ऐसा चक्कर

पड़ा, कि रातभर शंख बजता रहा। सारी सेना, सिपाही, अधिकारी, पल्टन, सब परेशान। वहाँ के महंत जी इनसे प्रभावित एवं मुग्ध होकर बोले, सब संभालो तुम्हारा ही है, परन्तु मन नहीं माना। वहाँ से चित्रकूट आ गए। परमहंसजी महाराज के यहाँ ठहरे। वे संत रात्रि में कोई कन्द लाए। धूनी में सेंक कर परात में फैलाया, ठण्डा किया। सन्त ने प्रसाद दिया, पाया ऐसी स्वादिष्ट मिठाई आज तक नहीं खाई। अब उसका दर्शन वहाँ पर नहीं होता। शयन की आज्ञा हुई, सोए किन्तु शरीर में कम्पन हुआ। उन्हें (सन्त) ने भी स्नेह दिया, बोले यहीं रहो। मन नहीं लगा, चल दिये।

प्रयागराज आ गए। रामानुजकोट में निवास किया। वहाँ पर जगमोहन की रामकथा हुई। सभी मुग्ध। अन्त में बोले अपार सम्पत्ति है, तुम यहीं रहो। सब तुम्हारी ही है। हमारे शिष्य हो जाओ। रात्रि विश्राम किया, सोते में शरीर में यहाँ भी कम्पन हुआ, यहाँ से भी अयोध्या आ गए।

श्री अवध में एक फलाहारी महात्मा ने एक केला, एक सेव खाने को दिया। रात्रि निवास यहीं हुआ। रात्रि में रामायण कथा हुई, तपसी जी का पूर्व प्रदत्त वरदान जगमोहन ने अवध को भी मोहित्त कर दिया। महंत जी बोले जगमोहन यह सिद्ध गद्दी है, चेला हो जाओ। यहीं रुको। आनन्द करोगे। रात्रि में जब सोए तब शरीर में फिर कम्पन हुआ। गुप्तारघाट फैजाबाद आए, वहाँ पर भी कथा हुई। सभी संत मुग्ध हो गए। उन्होंने भी आग्रह किया, यहीं रहो। फिर चल पड़े।

संयोग से अमावस्या का पर्व आ गया। प्रातः काल सरयू के अंक में खड़े थे, आवाज हुई तुम वहीं जाओ। तुम्हारे गुरु वहीं हैं। तुम्हें वहीं शान्ति मिलेगी। सरयू माँ का निर्देश पाकर वहाँ से चल दिए। रेलगाड़ी में बिना टिकट बैठे थे। टी.टी. ने कुछ कहा तो आपने एक शेर सुनाया-

हमवे सुल्ताने गुलिस्ता हैं..........

टी.टी. बहुत प्रसन्न हुआ। दो आने पैसे दिये। उनसे फल खाए।

कन्नौज आए। वहाँ पर कथा सुनी, कथा कही भी। पंगत पाकर वहाँ से भी चल दिये।

मथुरा में आ गए। सन्तश्री जयरामदास जी के बाड़े में ठहरे। रात्रि में वहाँ भी कथा सुनाई। वहाँ पर भी महंत जी ने चेला बनाने को कहा- शयन किया, तब वहाँ पर भी शरीर में कम्पन हुआ। वहाँ से पैसेंजर से चलकर नूराबाद आ गए।

बीच में उन दिनों जंगल तो था ही, करह का रास्ता भूल गए। धनेले ग्राम में कुत्ते भौंकने लगे। रात्रि में मन्दिर पर बाबा श्री भीखमदास जी के यहाँ कथा हुई। दो टिक्कर प्रसाद दिया। उन्होंने भी अपना चेला बनाने को कहा। रात्रि विश्राम किया तो शरीर में कम्पन फिर हुआ। चल दिये। प्रातः ही आ गए जहाँ आना था।

''तिनका तिनके पास''

गुरुचरण जो पूर्व से ही मन में स्थापित थे। 'करह' आ गए। प्रातः जिन करुणा सागर ने सरयू माँ के द्वारा नम वाणी से निश्चित करके कहा था, उन्हीं पावनतम गुरुचरणों में जाओ करह।

*****

बड़ोखर हनुमान जी का बुलावा

यास्मिन्दिने श्रवणं नास्ति विष्णु सेवा जन्म व्यर्थ माहु कथायाम्।
सर्वं व्यर्थं वैष्णवानां च दीक्षा कथां बिना सम्यगनुष्ठितां वे॥

यदि गुरु परम्परा प्राप्त सम्यक् विधि से भगवद् भजन-चिन्तन-स्मरण नहीं हुआ, उनसे संयुक्त रहकर, उनकी स्मृति के बिना जीवन एवं उसके समस्त संस्कार व्यर्थ ही हैं।

श्री हनुमान गढ़ी तीर्थ धाम

गंगा जी का प्रवाह निरन्तर बहता रहता है, इसी प्रकार इस धरती पर ऐसे (महात्माओं) महापुरुषों का अवतरण होता ही रहता है। यदि ऐसा न हो तो इस पृथ्वी पर धर्म का तो फिर लेश भी नहीं रहे। धर्म के बिना यह संसार एक क्षण भी नहीं रह सकता। धर्म के ही आधार पर यह जगत स्थित है। आज भी असंख्य सिद्ध महात्मा जंगलों में, पहाड़ों की कन्दराओं में जन सम्पर्क से अलग, लोक कल्याणार्थ योग, साधना, भजन करने में लीन हैं। संसार और शरीर की सत्ता चराचर में दिखने लगती है। ऐसे नित्य या मुक्त श्रेणी में लोक कल्याण के लिए शरीर धारण करते हैं, जो जन्म लेते हैं, मरते हुए से प्रतीत होते हैं। वास्तव में वे जन्म-मृत्यु से रहित होते हैं, केवल लोककल्याण के निमित्त ही उनका

प्रादुर्भाव होता है। जब वे अपना काम कर चुकते हैं,तब तिरोहित हो जाते हैं।

उनके कार्य गुप्त नहीं होते। वे राजाओं को, अधिकारियों को उपदेश करते हैं, शिक्षार्थियों को शिक्षा देते हैं, स्वयं आचरण करके लोगों में नवजीवन का संचार करते हैं, उनका जीवन अलौकिक होता है, उनके कार्य अचिन्त्य होते हैं। उनकी साधना का चलन ही हमारा प्रेरक है।

अभी तक शासकीय सेवा में, जिनकी सेवा में अनेक भृत्य, सेवक, कर्मचारी रहते थे, आज वही जगमोहन वैराग्य की बल्ली से गुरु चरणों में अपनी ही कमीज के टुकड़े की लँगोटी लगाए, पटिया के सामने करह की कर्कश पठारी चट्टानों पर गुरुदेव के सम्मुख हैं, जिज्ञासु बनकर बैठे हैं।

पटिया पर आसीन गुरुदेव नित्यनियम से निवृत्त होकर बिराजे। जगमोहन ने मर्यादित, करुणाद्र हृदय से मस्तक गुरु चरणों में रखा, कातर दृष्टि से गुरु चरणों का दर्शन किया। करवद्ध प्रार्थना की, गुरुदेव अपना चेला कर लो। महाराजश्री बोले एरे भैया तू तो पढ़ो-लिखो है, तोइ हम का बतावें? आपने पुनः प्रार्थना की, आप जो निरन्तर जपते रहते हो, वही हमको दे दो, कान में सुना दो, सुनते ही सिर पर वात्सल्य दुलार से हाथ फेरा, कृपा कर दी। जिसमें शब्द ब्रह्म या ब्रह्म को प्रतिष्ठित कर दिया तथा नामकरण रामदास हो गया। विक्रम सम्वत् 1981 का यह ब्रह्म मुहूर्त संस्कार के साथ। श्री गुरुदेव को प्रारम्भ से ही कथाएँ खूब सुनाई थीं। आज क्यों बन्द होतीं, वहीं कथा, भगवन्नाम दिन में हुआ, रात्रि को महाराज श्री ने आज्ञा की, सामने मिट्टी का छोटा सा चबूतरा संकेत कर दिया, इसी पर विश्राम करो।

अपनी ही कमीज फाड़कर हरिद्वार में जो लँगोटी लगाई थी, उसे ही लगाए हुए गुरुदेव की आज्ञा, आशीष लेकर उस चबूतरे पर जाकर जगमोहन से रामदास जो बन गए, सो गए। थोड़ी देर बाद शरीर में वही कम्पन फिर हुआ। श्री महाराज ने देखकर पूछा क्यों भैया? रामदास जी ने अभी तक की

बीती हुई पूरी घटना सुना दी। अयोध्या में सरयू माता से जो आज्ञा हुई, वह भी सुनाई।

श्री बड़े महाराज जी ने कहा भैया हमें सपने में आज्ञा हुई है। बड़ के नीचे दिया जल रहा है, श्री हनुमान जी बुला रहे हैं। फिर से महाराज श्री को कथा सुनाई। आज्ञा हुई। पुनः सो गए। लेटे ही थे कि जाने चूहा था या कोई और, दाहिनी ऐड़ी के नीचे का काफी मांस काटकर ले गया। रोने लगे रामदास। जाग गए गुरुदेव। पूछा क्या हुआ ? ऐड़ी दिखलाकर रामदास बोले किसी ने काटा है, महाराज जी बोले, हमें भी पटिया पर किसी ने काटा है। लेटे तो फिर किसी ने काटा। महाराज जी बोले- भैया रामदास तुम्हें बड़ोखर के हनुमानजी बुला रहे हैं। वहीं जाओ, चलने की मानसिक तैयारी हुई। गुरुदेव के चरणों में प्रणत हुए। गद्‌गद् कंठ, सजल आँखें , आशीर्वाद दिया,जाओ। तुम्हें अपनी शक्ति देने बुला रहे हैं। रेलवे लाइन की पटरी-पटरी पैदल चलकर बड़ोखर हनुमान जी की चरण शरण आ गए। पाथेय है गुरु आशीष। उसी के साथ बड़ोखर दर्शन कर ऐसा लगा जैसे निराधार बालक को माँ की दुलार भरी गोद मिल गई। यहाँ गुरुदेव से मोहन की प्रगति हनुमद मोहन की ओर चल पड़ी।

*****

हनुमान मिलन

आत्मा रामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्य हैतुकी भक्ति मित्थंम्भूत गुणो हरिः ॥

भगवान् के गुणों में दिव्यता ही ऐसी है कि कैसे भी ज्ञानवान आत्माराम मुनि क्यों न हों, वे भी भगवान की अहैतुकी भक्ति करते हैं।

श्री बड़ोखर वाले हनुमान जी

वस्तुएं स्वयं मूल्यवान या अमूल्यवान नहीं हैं, उनकी प्राप्ति की सुलभता, दुर्लभता देखकर ही समाज में उनका मूल्य स्थापित हुआ है। यदि हीरा-मोती, कंकड़, पत्थरों की भाँति सर्वत्र मिलने लगें, यदि स्वर्ण भी मिट्टी की भाँति वैसे ही बिना खोदे मिल जाए तो जनता में इनका इतना आदर, अधिक मूल्य नहीं हो सकेगा। जिन विभूतियों ने भी पहले अपनी सत्ता सर्वेश्वर को समर्पित कर दी, गुरुदेव की आज्ञा से लक्ष्यानुगमन में पुरुषार्थ जुटा दिया, वही महानता की सीमा में प्रतिष्ठित हो जाता है।

सांसारिक भोग एवं वासनाओं से उलटकर जिसने प्रभु प्रेम का पारस प्राप्त कर लिया, उसने सब कुछ पा लिया। वस्तुतः भगवतप्रेम ही सत्य है। प्रेम की साधना में दुःख कहाँ? वहाँ सन्ताप का स्पर्श कैसे? थकान, आलस्य या विषमता की अनुभूति ही समाप्त हो जाती है, मृत हो जाती है।

प्रेमी साधक का प्रेमास्पद की ओर चलना आनन्दमय, हर्षमय हो जाता है।

जहाँ अत्यन्त प्रेम हुआ प्रभु वहीं प्रकट हो जाते हैं। भगवान का न कोई एक निश्चित रूप है, न कोई एक ही नियत नाम, उनके असंख्यों रूप हैं और अगणित नाम हैं वे प्रेममय और भावमय हैं। जहाँ भी भावना दृढ़ हुई, प्रेम हुआ, वहीं तत्स्वरूप हो गया। शास्त्रकथा, गुरुकृपा, प्रभुकृपा तीन का सम्बन्ध ही मनुष्य के संसारी स्वरूप से चैतन्य, आनन्दस्वरूप में प्रतिष्ठित कर देती है। मूलरूप में गुरुकृपा ही पर्याप्त है। गुरुकृपा से क्या नहीं हो सकता? एक बार जिसके ऊपर गुरुकृपा हो गई फिर उसका इस संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। सद्गुरु ही ईश्वर हैं, उन्हीं के साकार स्वरूप का नाम गुरु है। कोई हाड़-मांस का पुतला गुरु नहीं हो सकता । यों सविशेष ब्रह्म रामदासजी को मिल ही चुके थे। आगे साधना क्रम में बड़ोखर हनुमानजी पर ले आए।

उस समय बड़ोखर मन्दिर कोई विशाल रूप में नहीं था। छोटी सी पाटौर, बड़ के नीचे हनुमान जी बिराजे थे। पाटौर में ही दो फुट ऊँची एक खिड़की थी, उसी में हाथ रखकर खड़े ही खड़े रामदास भजन में लीन हो गए। क्षणभर को भी नींद नहीं ले सकते थे। अगर लेट भी जावें तो पुट्ठे में कोई आकर काट ले। बड़ा अपार संकट, कष्ट। नंग-धड़ंग शरीर पुजारी बालाजी, बिहारी राम उसने एक टाट लेकर दे दिया। छः महीने तक उसी टाट को लपेटे रहे। न कुछ ओढ़ना, न बिछाना, खाने का भी कोई प्रबन्ध नहीं, पुजारी कभी प्रसाद देवें, तो लें। अन्यथा रामनाम हनुमत्दर्शन ही आहार था। कुछ दिनों बाद चर्चा फैली, इस रूप का कोई महात्मा हनुमान जी पर तपोलीन है। दर्शन करने पर राजाराम पहलवान जो खास मित्र थे, पूरी मण्डली को लेकर पहुँच गये, जो शासकीय सेवाकाल के सहपाठी, सखा, सहकर्मी थे, कुछ एक रामलीला, कथा, कीर्तन मण्डल के मित्र थे, वे सब यह कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। उनका जगमोहन टाटम्बरी नंग-

धड़ंग, भूखा, प्यासा, मिट्टी के करूए (चपटे) से पानी पिए, वस्त्रादि लेकर पहुँचे और बोले ले कोट, पैंट पहन। चल उठ, ले सब सामान संभाल। मिट्टी का करुआ उठाया तो देखा, सौ, दो सौ बिच्छू। घबरा गया। पुनः आए, तो देखा जो कपड़े लेकर गए उन पर पानी में हजारों बिच्छू जहाँ देखो वहाँ बिच्छू। राजाराम घबरा गया। बोला इनसे रक्षा करो, अब आपसे कोई आग्रह नहीं करूँगा। लगभग तीन वर्ष का समय इसी कठोर साधना में गया। छः महीने सोए नहीं, रामदरश आश। आँखें एकदम सुर्ख लाल हो गईं। शरीर बिल्कुल कृश हो गया, दूसरी ओर श्रीराम प्रेम उतना ही सबल एवं पुष्ट हो रहा था। चाहे कोई आओ-जाओ न किसी को देखना न किसी से कुछ बोलना।

पुरानी मित्र मण्डली कभी-कभी दर्शन को आती तो प्रयास करती, कि उनका जगमोहन पूर्व की भाँति हँसे- हँसाए, मजाक करे। कभी-कभी तंग करने का प्रयास भी किया परन्तु उन्हें क्या पता कि उनका जगमोहन अब सच्चा रामदास बन गया है। उन्हें तो रह-रहकर आश्चर्य था-कि आकर्षक मुख, आभा, सुसज्जित वेशभूषा से सुशोभित रहने वाला उनका वह साथी जगमोहन रूप से लँगोटीधारी, करुआ (मिट्टी का चपटा) धारी बन गया है। अपनी इस अगाध अनुरागमयी आराधना में हनुमानजी की कृपा का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। हनुमान जी ने अनेक लीलाएं एवं रहस्य दिखलाए। कौन-कौन सी लीलाएँ दिखलाईं, इस ढीठ ने कई बार आग्रहपूर्वक दीनता से गिड़गिड़ा कर पूछा किन्तु लेखन समय पर बार-बार प्रश्न करने पर भी स्वयं श्री मुख से इतना ही कहा। आगे नहीं बतलाया। कौन-कौन वर्चा लीला रहस्य बतलाए। उस समय मोतीराम नाम का एक सिपाही था, जो नित्य दर्शन को जाता था। श्री रामदास जी के बहुत पीछे पड़ा- इस सिद्धि में से कुछ हमको दे दो। आँखें तो लाल थीं ही, जैसे ही उसकी ओर देखा डर के मारे भाग गया। उसी समय के डौंगर एवं बटुरी दोनों डकैत बड़े प्रसिद्ध

थे। दर्शन को आए, बिना कुछ बोले दर्शन करके चले गए। हनुमान जयंती के दिन प्रातःकाल हनुमानजी ने आज्ञा की हमारा काम करो। हम साथ रहेंगे। उसी दिन इस सन्देश के साथ गुरु चरणों में नत हो गए। प्रेम विव्हल होकर नयनाश्रुओं के गंगा, यमुना जल से श्री गुरु चरणों का अभिषेक किया। दोनों आँखें गुरु चरणों में झरने की तरह बह पड़ीं, रोए नहीं, धारा बह चली। प्रसन्न होकर गुरुदेव ने प्यारे रामदास को छाती से चिपका लिया। आशीर्वाद दिया और समझाया भैया कलियुग आ गया है, तुमको श्री हनुमानजी ने रामनाम प्रचार-प्रसार की आज्ञा की है।

गुरु-शिष्य की मर्यादित परम्परा प्रेम के प्रबल प्रवाह में कुछ काल को अवकाश पा गई। कुछ दिन गुरुदेव एवं शिष्य अर्थात् बड़े महाराज जी एवं छोटे महाराज जी एक पत्थर की चुर छोटी सी खरल उसी में दूध रोटी मसलकर साथ-साथ ही पाते रहे। कभी-कभी वनस्पति पत्र, दूर्वा भी आहार रही। कुछ दिन पश्चात् आज्ञा कर दी, रामदास, राम नाम का प्रचार-प्रसार करो, श्री हनुमानजी की आज्ञा हुई है।

हनुमानजी एवं गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर राम के प्रचारार्थ निकल पड़े।

*****

विलक्षण कथा-प्रेम

अनन्त नदियों के निरन्तर प्रवाह से भरते रहने पर समुद्र ने कब कहा- अब नहीं, अब नहीं। अब मैं पूर्ण हो गया। महापूर्ण हो गया। अनन्तानन्त जीव आकाश में अवकाश प्राप्त करते जा रहे हैं, परन्तु आकाश ने कब किससे कहा अब रुको। जगह नहीं है? पूज्यश्री की हृदयस्थली वह सागर था जिसमें प्रभु-कथा की सरिता चाहे कैसी भी हो, निरन्तर भरते रहने में कभी पर्याप्त है। ऐसे शब्द कभी सुनने-देखने को नहीं मिले निरन्तर सुनते ही रहना-सुनते ही रहना पूर्णता नहीं।

जिनके श्रवण समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे। तिनके हिय तुम कहँ गृह रूरे॥

कथा-कथन में ऐसी अद्‌भुत निष्ठा कि उसे वशिष्ठ के समान ही मानकर सम्मान देते थे। चाहे नासमझ हो, बालक हो, जिस भी योग्यता का हो। ऐसा भी देखने को मिला, विदाई होने के पश्चात् कोई वक्ता पुनः प्रणाम करने गया तो उतना ही सम्मान फिर किया। कितनी ही रात बीत जाय, निद्रा ने उसकी आँखों पर कभी अपना आसन नहीं लगा पाया। कभी-कभी ऐसे अवसर भी कई बार आये- जब सात-सात दिन पर्यन्त निरन्तर भगवन्नाम कीर्तन कथा में ही रहे। शरीरचर्या स्वतः दूर ही रही। इस विलक्षण प्रतिभा, निष्ठा मधुर मनोहर मूर्ति वाणी पर जन-मन-मुग्ध था। महाराजश्री का पावन संयोग सदा बना रहे। यह बोलते रहें, हम सुनते रहें, इनका दर्शन सदा होता रहे, यह भी हमें सदा देखते रहें।

महाराजश्री के कथा- स्वरूप का यथार्थ परिचय स्थान पर प्रथम यज्ञ में ही जब अपार जनमानस का मन उनकी कथा सुनने के पश्चात् प्रशंसा में रत दिखा-तब यहाँ क्षेत्रीय जनता में अपार गौरवानुभूति हुई तथा गाँव-गाँव ले जाकर कथा सुनने का क्रम भी प्रारम्भ किया। जो सर्वप्रथम सिद्धों से

लेकर आचार्य पण्डितों के मध्य से जन-सामान्य तक पहुंचा।

प्रथम बार वि. सम्वत् 2001 में जब करह स्थान पर विशाल यज्ञ हुआ, उसमें लगभग एक हजार विद्वान ब्राह्मण, सिद्ध संत, श्री हरिबाबा महाराज, श्री उड़िया बाबा महाराज, श्री अखण्डानन्दजी आदि विभूतियों सहित सहस्त्रशः सन्त-भक्त पधारे। उस समय महाराज श्री की प्रतिभा पर विमुग्ध ब्राह्मण, आचार्यों ने प्रार्थना की- आप कुछ सुनाएँ। विनम्रता पूर्वक हाथ जोड़ लिए, किन्तु सभी ने, श्री बड़े महाराज श्री से प्रार्थना की, तब आपने अपना प्रवचन सुनाया। सार रूप से संकेत में इस प्रकार है-

वर्णानामर्थ संधानां रसानां छन्द सामपि।
मंगलानां च कर्तारौ वन्दे वाणी विनायकौ॥

रामचरित मानस के ग्रन्थकार गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने ग्रन्थ को 'वकार' से प्रारम्भ किया, 'वकार' पर ही पूर्ण किया। प्रारम्भ में श्लोक वर्णाना............अन्त में 'दह्यन्तिनो मानवाः।' यह 'वकार' अमृत का बीज है। इस ग्रन्थ में भक्ति अमृत है। दूसरे इस श्लोक में मंगलाचरण किया है- वाणी, विनायक। इन दोनों देवताओं के नाम में भी प्रारम्भ में 'वकार' है। रामायण के आदि रचयिता श्री वाल्मीकि जी में 'वकार' है। 'ब्राह्मण' में भी 'ब' प्रथम है। 'वैष्णव' में भी 'वकार' प्रथम है। काव्य के अनुसार मंगलाचार तीन प्रकार का होता है- वस्तु निर्देशात्मक, आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक। गोस्वामी जी ने इनका पूर्ण पालन किया है। इस ग्रन्थ में हम क्या-क्या कहेंगे। वस्तु निर्देश, आशीर्वाद, नमस्कार।

वस्तु निर्देश। भगवान श्रीराम का जो किसी वर्ण में नहीं, वह वर्ण में आए। समस्त बालकाण्ड श्रीराम के आगमन से विवाह पर्यन्त चरित्र वर्णन किया। श्लोक का दूसरा पद- 'अर्थ संधानां' इससे दूसरे अयोध्याकाण्ड का संकेत जिसमें राजतिलक आदि अर्थ सम्बन्धी घटना है। इसमें अर्थों का समूह है। तीसरा पद रसानां है- तो रामचरित्र मानस के तीसरे काण्ड

अरण्यकाण्ड-भूमिका में पहले दोहे में ही नवरसों का दर्शन है-

(1) एक बार चुनि कुसुम सुहाए- शृंगार

(2) सीतहिं पहिराए अति सादर - हास्य

(3) सीता चरन चोंच हति भागा- वीभत्स

इस प्रकार अरण्य काण्ड के प्रारम्भ में ही नवों रसों का दर्शन है। 'छन्द सां' पद से किष्किन्धा काण्ड का निर्देश। काव्य के छन्द पदों की शब्दों की व्यवस्था है। इस काण्ड में वर्ण-वर्ण के बानर ,यूथपयूथ, लाल, पीले, काले, मुँह के पंक्तिबद्ध खड़े हैं। यह पिंगल शास्त्र है। शब्दों को एक पंक्ति में बिठाओ। कविता बन गई। संस्कृत में आठ एवं भाषा में सोलह जाति के छन्दों की व्यवस्था है। रचना है।

पुराणों में कथा आती है, गरुड़ के भोजन के लिए प्रतिदिन एक सर्प नियम से आता था, संयोग से किसी दिन पिंगल जाति का साँप आया जिसका क्रम था। उसने आते ही गरुड़ से कहा- आज मेरा बड़ा सौभाग्य है- आपका भोजन बनूँगा। किन्तु अन्नदाता मेरी प्रार्थना है- मेरे पास एक विद्या है। जो विलुप्त हो जाएगी। प्रार्थना है उसे आप सीख लें। उसने नियमतः यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, नगण, सगण, लघु-गुरु आदि की व्यवस्था बतलाई, जिसमें इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र वज्रादि मन्दाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीडित समस्त छन्दों का विधान कहा। आगे-आगे चलता भी गया, बतलाता भी गया, तब तक वामी आ गई उस बाल्मीक (बांबी) में घुसते-घुसते बोला लो याद करो, यह कहकर वामी में चला गया। मात्रा का सबसे बड़ा छन्द है, भुजंग प्रयात्

नमामीशमीशान निर्वाण रूपं ------------याद करो।

और स्वयं उस वल्मिकी (वामी) में प्रवेश कर गया। पिंगल यह एक सर्प से चला। किष्किन्धा में प्रभु श्रीराम सीता विरह में इतने दुःखी हुए लक्ष्मणजी से कहते हैं-

कतहुँ रहति जो जीवित होई। तात जतन करि आनौं सोई।

तथा

एक बार कैसे हु सुधि आनौं कालहु जीति निमिष महँ आनौं।।

बड़ी चिंता में डूब गए। मर गई, या जिन्दा है, अपार चिन्ता। सुन्दरकाण्ड अपि से व्याख्यायित है, रावण ने श्री सीता जी को अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे रखा। हनुमानजी भी शोध करते हुए वहीं पर पहुंचते हैं।

मंगलानां से लंकाकाण्ड की स्थापना का संकेत हैं। लंका में राक्षस मरे, किन्तु सभी को मोक्ष प्राप्त हुआ। सभी का मंगल हुआ। रावण, कुम्भकर्ण आदि भी राम-राम बोलकर प्राण छोड़ते हैं। देवता भी जो अभी तक मेरुगिरि गुफाओं में छिपे हुए थे, अपने बाल-बच्चों में आ गए, उनका भी मंगल हुआ। कथा वाचकों पर मार पड़ती थी, वह भी आनन्द से कथा कहने लगे, यज्ञ होने लगे। इस प्रकार मंगल ही मंगल चारों ओर होने लगा। यह लंकाकाण्ड हुआ।

"कर्तारौ" पद से उत्तरकाण्ड का वस्तु निर्देश है। ऐसा कर्ता आज तक कोई नहीं हुआ जिसके राज्य में माँगने पर जब इच्छा हो तभी बादल पानी बरसाने लगें, यह भी 'राम' के राज्य में ही हुआ।

माँगे बारिद् देहिं जल, रामचन्द्र के राज।

धरती भी सदा सर्वदा हरी भरी धान्य सम्पन्न रही।

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। त्रेता भइकृत जुग की करनी॥

इस प्रकार श्री गोस्वामी जी के प्रथम श्लोक में मंगलाचरण में सातों काण्डों की वस्तु का निर्देश है। इसमें सर्वप्रथम वाणी एवं विनायक की वंदना है। वन्दे, यह नमस्कारात्मक है। इसमें वाणी प्रथम पूज्य, पुनः गणेश वन्दना, प्रथम वन्दना वाणी की ही है। क्यों? वाणी के बिना व्यवहार ही संभव नहीं। श्री रामचरित मानस भक्ति प्रधान ग्रन्थ है। वाणी स्त्रीलिंग है। इसलिए प्रथम पुलिंग श्री गणेश वन्दना बाद में है। यह धर्म शास्त्र की मर्यादा है। इस धर्म मर्यादा के साथ-साथ अन्तःकरण में तुलसीदास अपने इष्ट का स्मरण कर रहे हैं। जानकी विलाप नाटक तथा अन्य कई वाव्यों में जानकी

जी का नाम वाणी और उनके विशिष्ट नायक श्री रामजी इस प्रकार हृदय से गोस्वामी जी ने श्री सीताराम जी का मंगलाचरण किया। बाहर मर्यादा रखी, किन्तु जब विनयपत्रिका देखते हैं, तो तुलसीदास सौगन्ध खाते हैं-

राम की सौगन्ध राम मेरे-----------

मैं रामजी की सौगन्ध खाता हूँ। श्रीराम नाम मेरा सार सर्वस्व, वह मेरे लिये नहीं, सभी के लिये सदा सर्वदा कामधेनु है, कल्पवृक्ष है। इस मंगलाचरण में गोस्वामी जी के हृदय को देखो तो पता लगेगा। उन्होंने राम नाम को ही सर्वस्व बतला दिया।

'वर्णानां' में 'रकार' ऊपर, मकार ऊपर। उक्त दोनों वर्ण गोस्वामी जी के हृदय में प्रतिष्ठित हैं, वे ही तुलसीदास जी के मत से सर्वोपरि हैं, समस्त वेद, पुराण, काव्य, ऋषि, देवता तथा ब्रह्मा एवं शिवादि को भी अभीष्ट हैं। इसी राम नाम को सर्वोपरि सिद्ध कर इसका ही जप करो। यह विलक्षण कथा-प्रवचन की भूमिका मात्र सुनकर समस्त सिद्ध समाज सिद्ध सन्त प्रसन्न होकर 'रामायणी' रामायण-भूषण कहकर प्रशंसा करने लगे। उसी दिन से सर्वत्र ग्वालियर वाले रामायणी बाबा "श्रीरामदास" जी करह वाले प्रसिद्ध हो गए तथा सिद्ध परिकर के साथ भारतवर्ष भर में कई स्थानों पर सत्संग मंडल स्थापित किए। उनके कथा प्रवचन अत्यत्र भी कहीं,कहीं देखने पढ़ने को मिलेंगे। यहाँ इतना परिचय मात्र ही है।

सारांश में इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि महाराज श्री का कथा-प्रवचन, पान्डित्य, प्रतिभा, काव्यमीमांसा एवं भक्तिमाता का सर्वोत्कृष्ट रूप प्रकट होता था जिसकी भाव धारा में डूबे हुए श्रोता, घर-द्वार, गृह-परिवार का मोह छोड़कर पीछे-पीछे चल पड़ते। महाराज जी द्वारा निवारण कर अश्रु धारा में डूब जाते थे, डुबा जाते थे।

उनकी साधना का यह चमत्कारी प्रभाव आज भी दर्शनीय है।

*****

तत्व दान-लोकमंगल यात्रा

सागरं प्राप्य जल बिन्दुर्न पतित गिरि शेखरे।
तथा जीवोहरिं (गुरुं) प्राप्य न हि दुःखी कदाचन
सरिता जल सागर में पहुंचकर वैसे ही जीव हरिगुरु पाकर॥

जिसे अमृत कलश मिल जाय, वह खट्टी छाछ माँगने के लिये किसी के दरवाजे पर क्यों जाने लगा ? जिसके पास चिंतामणि है वह कागजी गहने क्यों पहनने लगा ? जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य, सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश, सम्पूर्ण श्री के अधिष्ठाता को प्राप्त कर चुका उसे अब जगत से क्या प्रयोजन रह गया ? श्री हनुमान जी से तादात्म्य कर जो आपने प्राप्त किया उसे कहकर भी हम सभी से नहीं कहा। क्योंकि ऐसी कृपा का तादात्म्य जो चमत्कार की ओर इंगित करते हैं, कहकर रोक रखा था- ऐसा तत्व या चमत्कार-छपाना नहीं छिपाना चाहिये।

तात्पर्य यह है कि लिखने के लिये ही यह सब था किन्तु अवज्ञा कर लिखने का साहस किसमें है ? अस्तु-इतने संकेत से विज्ञजन सन्तुष्टि कर ही लेंगे।

भगवान बुद्ध की भाँति इस सिद्धि को लेकर गुरु चरणों में करह पर समर्पित कर दिया। इधर श्री बड़े महाराज जी ने समस्त गाँव वालों को बुलाकर घोषणा की- भैया रामजी की इच्छा है। झण्डा लेकर गाँव-गाँव श्रीराम-नाम कीर्तन तथा रामायण का प्रचार-प्रसार करो ?

जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है- 'भक्त, भक्ति, भगवन्त, गुरु, चतुर नाम वपु एक' अर्थात् -

भक्त, भक्ति, भगवन्त गुरुदेव विचार करने पर एक ही हैं। पृथक नहीं। भक्त जो प्रभु प्रेम चाहता है - भक्ति प्रेम भगवन्त प्रेमास्पद जिनसे प्रेम करता है, गुरुदेव इनके दाता। इस दृष्टि से गुरुदेव सर्वोपरि हैं। श्री बड़े

महाराज जी भी तो पहले से ही नाम को भगवान का स्वरूप समझकर ही निरन्तर दर्शन करते , कहीं जाते तो नामाक्षर जो 'बड़' के पेड़ में डाली में रामरूप उनके सामने बहुत देर तक भाव-विभोर खड़े रहकर प्रार्थना करते, आज्ञा लेते थे। अपने अनुभव से यह झण्डा देकर उसी के प्रचार-प्रसार का आशीर्वाद गुरुदेव ने दिया। यों श्री बड़े महाराज जी ने कभी आदेश या कथा तो नहीं कही, किन्तु वार्ता में कभी-कभी जो तथ्य सामने आया, उन्हीं का कुछ अंश इस प्रकार है-भैया

इस युग कथा तो यही सर्वोपरि, सर्वश्रेष्ठ, सुलभ एकमात्र साधन है। उनका भाव था महाप्रभु चैतन्य का तो अवतार हेतु भी यही है। हनुमान जी की आज्ञा है इसी का प्रचार-प्रसार झण्डा लेकर करो।

उसी समय सर्वप्रथम बड़ोखर से ही शोभायात्रा के साथ श्री बिहारी जी मंदिर जो नगर मुरैना का सर्वश्रेष्ठ मन्दिर है, उसी पर सात दिन-रात्रि का अखण्ड श्री सीताराम नाम संकीर्तन हुआ। अन्धकार में प्रकाश का दिव्य चेतना का उदय हुआ। बिना किसी कथा, प्रवचन, प्रयास के स्वतः ही जनमानस की धारणा में परिवर्तन श्रीराम नाम के प्रति आस्था एवं महाराज श्री के पीछे-पीछे जन सैलाव उसी प्रकार मंडराने लगा- जैसे मधु के पीछे मधुलोभी मधुमक्खी। नामानुराग यह विलक्षण प्रवाह।

गाँव-गाँव छोटी, बड़ी सभी बस्तियों से निकला, ऐसा अद्भुत जादुई प्रभाव दुर्दान्त, दुराचारी, लूटपाट, डकैती, चोरी करने वाले भी इस कीर्तन गंगा में डूबकर अपना मार्ग बदलकर वैष्णव बनकर राम नाम में कथा-लीला एवं महाराज श्री के चरणों में चिपक कर रह गये।

यह राम कीर्तन एवं राम कथा, लीला का प्रचार-प्रसार निरन्तर लगभग पचास वर्ष तक अनवरत चला। उस समय क्षेत्र में निपट अज्ञानता, गरीबी-ईर्ष्या, चोरी, लूटपाट, डकैती आदि का भयावह वातावरण था। उस वातावरण को आपने श्रीराममय कर दिया। जिधर से भी यात्रा निकली उधर रामनाम

की गंगा स्वतः उद्भूत होकर अपनी अनुगामिनी बनी, जिसने उपर्युक्त वातावरण भक्तिमय बना दिया। इस नाम गंगा का पावन प्रवाह महत्व के साथ,नाममय, प्रेममय बनाने लगा।

*****

भगवत कथा-यात्रा

(करुणासागर की विभूति)

ग्रीष्मतप से निदग्ध प्रकृति के समस्त ताप-संताप को वर्षा की बहार, किसी वन, उपवन में बसन्त-वैभव के विकसित सुगन्धित सुमन अयाचित भाव से अप्रार्थित रूप से सभी तुष्ट-पुष्ट प्रसन्न करते हैं। कोई उनसे प्रार्थना करे- याचना करे, न करे, अपने संयोग से बिना किसी योग्यता अधिकार के सभी पर समानभाव से अपनी वर्षा करते हैं। जीवन देते हैं, सुख देते हैं, अलौकिक आनंद देते हैं। प्रेरणा देते हैं। सूर्य को प्रकाश के बदले में कब, किसने क्या दिया? चन्द्रमा से पोषण शक्ति लेकर, अमृत किरणें लेकर, कब किसने क्या मूल्य दिया? प्राणवायु को आज

श्री श्री 1008 बाबा रामदास जी महाराज करह सरकार

तक किसी ने क्या कुछ दिया ? जब देखते हैं, यह करुणा सागर की विभूति के करुणा अंश हैं, वे ही हमें सर्वस्व दे रहे हैं। ऐसे ही प्रभु के कृपा स्वरूप संत, कभी दुखी-दीन-पतित, निराश्रित-असहाय-दीन- अकिंचिन, लाँछित-उपेक्षित जीवन जीकर तड़पते हैं- बिलखते हैं, तब ऐसों पर अपनी कृपा-करुणा के रूप में स्वयं ही इस संत वेश में आकर कल्याण का मार्ग देकर दुःखियों का दुःख, सदा-सदा को शान्त कर सुख-स्वरूप से भेंट कराने में तत्पर रहते हैं।

महाराज श्री की यह नाम-लीला, कथामृत की सरिता उत्तरोत्तर उत्तरोन्मुखी होकर बह चली। मुरैना की सीमा से लगा हुआ- राजस्थान का धौलपुर,उसके पास का क्षेत्र, पुनश्च आगरा- उत्तर प्रदेश सम्पर्क में आया।

वि.सं. 1986 तदनुसार सन् 1926 में गीता प्रेस की स्थापना गोरखपुर में हो चुकी थी। आज से सत्तर वर्ष पूर्व सन् 1935 में गोविन्द भवन कलकत्ता में महाराजश्री की भेंट सुप्रसिद्ध संत स्वामी श्री रामसुखदास जी से हुई, उस समय महाराज श्री का प्रवचन इतना प्रभावपूर्ण हुआ कि बंगाल प्रान्त कलकत्ता में ऐतिहासिक प्रभाव पड़ा। ग्वालियर वाले रामायणी बाबा का स्वरूप ध्वनि यंत्रों में संग्रहीत सुरक्षित कर लिया। सहसा किसी दिन स्वामी जी ने महाराज श्री से यकायक कहा- आपको ग्वालियर वाले रामायणी बाबा की कथा सुनवाएँ, महाराजश्री को आश्चर्य हुआ, विनम्र भाव से बोले- सुनवाने की कृपा करें। ज्यों ही सुना, आश्चर्य हुआ। उस समय टेप रिकार्डर प्रचलन में नहीं था, सर्वप्रथम वहीं देखा। जितने कथा प्रवचन हुए पूरा ही रिकार्ड किया गया। वहाँ उसकी कैसिट आज भी उपलब्ध हैं।

स्वामी जी का सम्पर्क, जगदगुरु शंकराचार्यों से कथा सम्पर्क उस समय हो चुका था, तत्पश्चात् श्री धाम वृन्दावन में आपका भाव-प्रवाह उमड़ा। तत्कालीन सिद्ध विभूतियाँ अनन्त श्री बाबा श्री हरिदास जी उड़िया बाबा महाराज, श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज, भक्तमालीजी विराजमान

थे, तभी ग्वालियर वाले रामायणी बाबा का प्रभाव एवं महिमा जन-मानस के हृदय में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुकी थी। श्रावण मास में प्रतिवर्ष नियमानुसार जाते रहे। मन्दिर-मन्दिर, घर-घर में आपकी मानसीमूर्ति प्रतिष्ठित हो चुकी थी। जनता आपके दर्शनों को उत्कण्ठित रहती थी। यहीं से उपरोक्त विभूतियों ने महाराज श्री से गोरखपुर ले जाने का आग्रह किया, भगवद् प्रेम के स्वरूप, तीर्थों की अवज्ञा कैसे करते, चले गए।

गोरखपुर में गीता प्रेस के संस्थापक भाई जी श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार, जय दयाल गोयनका, चिम्मन लाल गोस्वामी, तत्कालीन पं. श्री शान्तुन बिहारी द्विवेदी, जो बाद में श्री अखण्डानन्द सरस्वती नाम से सुविख्यात हुए आदि को लेकर देश-विदेश की तमाम विभूतियों में हृदयस्थ हो गए। जैसे ही चलने की आज्ञा मांगें, तो श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी ने भाई जी को संकेत कर रखा था, ये वैसे नहीं रुकेंगे। जैसे ही चलना चाहें आप पैरों में गिर जाना- कहना गले पर चरण रखकर भले ही चले जाएँ, अन्यथा कृपा करें। महाराज श्री को संकोच था, साथ में लगभग पचास-साठ साधू थे। सभी के आग्रह से एक महीने निरन्तर रहे। उस सत्संग की महिमा सर्वत्र प्रसिद्धि का परिचय होकर व्याप्त हो गई।

बंगाल एवं गोरखपुर के पश्चात् लखनऊ पधारे। लगभग सत्तर वर्ष पूर्व सन् 1936 वि.सं. 1992-93 में भक्तवर श्री लुम्बा जी के यहाँ रुके। संयोग डॉ. सा. श्री भोलानाथ जी उनके पुत्र श्री हीराबाबू बहुत प्रभावित हुए। अनुनय विनय करके घर पर लाए। उनका स्नेह, सत्कार स्वीकार किया। आग्रह करने पर भी वहाँ प्रसाद (भोजन) नहीं पाया। केवल दूध पीकर चले आए जहाँ पहले विक्टोरिया पार्क तथा कम्पनी बाग नाम से जाना जाता है, वहीं पर कालीमाई के मन्दिर पर रुके। जब कुछ लोग साथ गये, तो देखा, गोरखपुर से लौटे हुए सभी सन्त साथ में थे। लगभग सात दिन वहीं कथा- सत्संग चलता रहा। भक्तिमती कमलाबाई ने बतलाया हम लोग भी

नित्य कथा सत्संग में गए, श्री महाराजश्री का दर्शन उनका प्रभाव आकर्षण लखनऊवासियों का मन मधुलोभी भ्रमर बन गया। सभी में केवल एक यही उत्कण्ठा-जीवन इन्हीं चरणों में बीते। एक दिन प्रार्थना की, घर पर प्रसाद बनवाया। सभी सन्त समाज पधारे, इच्छा तो पूरी हुई किन्तु प्रसाद कम था, सन्त बहुत थे। महाराज श्री ने हम सबको बाहर भगा दिया, स्वयं प्रसाद के ऊपर वस्त्र ढककर वहीं बिराजे रहे। आपने प्रसाद सभी के आग्रह करने पर भी नहीं लिया। जब सभी प्रसाद पा चुके तब अन्तिम सीताराम बोले केवल आप भर का प्रसाद शेष था। उतने ही प्रसाद में सब सन्त भक्तपूर्ण हो गये। मात्र कोई व्यक्ति या परिवार ही नहीं, लखनऊवासी जो भी सम्पर्क में आए पलभर को भी छोड़ने में पाप एवं कष्ट का अनुभव करने लगे। निरन्तर सामीप्य बना रहे, यही दर्शन, सत्संग स्वाध्याय बन जाय।

प्रभु प्रेमी परिवार की पर्याप्त वृद्धि हुई। कुछ स्थलों पर वार्षिक सत्संग सम्मेलन प्रारम्भ करा दिये। गोमती आश्रम पर रुकते थे। फिर तो वर्ष में चार, छः, आठ बार भी यह आनन्द सरिता प्रवाहित होने लगी। बहुत से सन्त भी महाराजश्री के साथ जाते रहे। श्री रघुवीरदासजी शंख वाले बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गए थे। इनका शंख लखनऊ निवासियों को भय एवं कौतुक प्रदान करता था। क्रमशः मवैया मौहल्ला श्री गणेशरामजी, पं. श्री राजाराम जी, खुन-खुन जी भी सम्मेलन कराने लगे, पत्पश्चात् सियावर निवास का शुभारंभ बाबू कामता नाथ जी, चन्द्रमुखी जी के यहाँ भी यह आनन्द धाम प्रतिष्ठित हो गया।

समीपवर्ती नगर बाराबंकी, वहाँ लखनऊ के स्वामी नारदानन्द जी बड़े अनुरागी सन्त थे। वे महाराजश्री को आग्रहपूर्वक सन् 1942 में ले गए। वहाँ भी लखनऊ से भी दिव्य भाव धारा का आनंद मिला। भक्तिमती सरोज बुआ जी, जो आज-कल करह आश्रम में भजन सेवा में संलग्न हैं, उन्हीं के पिता श्री रामेश्वर प्रसाद बाबू, श्री रूप नारायण जी वकील सा., श्री लाड़ली

जी आदि ऐसे भावुक श्रोता जबसे कथा में बैठे निरन्तर अश्रुधारा प्रवाहित होती रहती थी।

लगभग 44 वर्ष पहले श्री महाराज जी एक सम्मेलन में पधारे। सभी श्रोता, जिनमें उपरोक्त महानुभाव बैठे हुए थे, संयोग से बड़हर नाम के फल की चर्चा चल गई, महाराजश्री ने कभी देखा, सुना नहीं था। यकायक मुँह से निकल गया कैसा होता है बड़हर? सभी बोले, महाराज जी। उसका मौसम जुलाई, अगस्त है, समय आने पर सेवा में प्रस्तुत करेंगे। तब तक जिस पीपल में नीचे बिराजे हुए थे एक बड़हर का फल एकदम पका हुआ लाल, कम से कम ढाई-तीन किलो वजन का, देखते ही सब लोग बड़े आश्चर्य में डूब गए, यह इस समय कहाँ से, कैसे? तब्र तक एक विशाल बानर आ गया, महाराज जी के ठीक सामने बैठ गया। भोग लगाकर महाराज जी ने उस बानर को प्रथम भोग दिया। इसके बाद सभी जो वहाँ बैठे हुए थे सभी को दिया। बोले! महाराज जी ऐसा मधुर और स्वादिष्ट बड़हर तो कभी नहीं देखा न पाया। बानर सहसा महाराज श्री के कंधों पर उछल कर बैठा, चला गया। ऐसे प्रसंग कभी सामने आए तो महाराज श्री कहते थे-

"कहना, सुनना कुछ नहीं चुप रहना है खूब।
कहने से दो होत हैं, मैं मेरा महबूब॥"

*****

महाराज जी का कवि स्वरूप

कविता, गणित या किसी अन्य विषय की भाँति अभ्यास करने से नहीं आती। वह तो अलौकिक प्रतिभा है। पूर्वकृत पुण्यों के परिणामस्वरूप ही वह प्रतिभा प्राप्त होती है। जिसे यह काव्य प्रतिभा प्राप्त हो, कोई देवपद उसकी समता में नहीं आता। विलक्षण प्रतिभा, शारीरिक बल, सम्पत्ति वाले कितने बड़े- बड़े सम्राट इस धरा पर आए, चले गए। कोई नाम भी नहीं जानता किन्तु व्यास, वाल्मीकि, तुलसी, कालीदास जैसे कवि सर्व सामान्य जनों से, झोपड़ी से लेकर महलों तथा राज- सम्पदा से सम्मानित हैं और सदा रहेंगे।

वस्तुतः कविता रूप से श्री हरि ही स्वयं अपने मुख से उस सत चित्त और आनन्दामृत की वर्षा करते हैं जिसे सुनकर सुकृति और भाग्यवान पुरुषों का मन-मयूर पंख फैलाकर नृत्य करने लगता है। नृत्य करते-करते अश्रुधारा बह चलती है जिन्हें बुद्धिरूपी मयूरी पान करती हैं। आह्लाद को गर्भ में लेकर आनन्दरूप पुत्र का प्रसव करती है। वे माता-पिता कुल धन्य हैं, जिन्हें ऐसा प्रतिभा -सम्पन्न पुत्र प्राप्त होता है।

कविता का कोई निश्चय नहीं, कब परिस्फुट हो उठे। वह तो जन्म के साथ आकर सदा साथ रहती है, अवसर पाकर बाहर बाङ्मय बन जाती है। ऐसे महापुरुष वन्दनीय हैं-

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।

नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥

अर्थात् उन परमपुण्यवान रसंसिद्ध कवीश्वरों की जय हो जिनके यश रूपी शरीर को अवश्य प्राप्त होने वाले बुढ़ापे तथा मरण का भय नहीं है। कवि का यथार्थ स्वरूप, शरीर तो उनका सुयश ही है, उनका सुयश सदा सर्वदा अमर बना रहता है, उसका नाश कभी नहीं होता।

महाराज श्री में काव्य-प्रतिभा इतनी विलक्षण थी, तत्काल लोकभाषा में रस-रहस्य से भरी, मर्मस्पर्शी कविता जो एक बार सुनने के पश्चात् हृदय से निकालने पर भी न निकले। छप्पय, पद, दोहे, सबैया, कविता, आदि यदि उन सबका संकलन संभव हुआ तो कभी उन्हीं की कृपा से पाठकों के सम्मुख आ ही जायेगा। श्री बडे महाराजश्री के सियपिय- मिलन महोत्सव में प्रतिवर्ष निमंत्रण में अपना आत्म निवेदन किसी छन्द में अवश्य होता रहा। शरीर इन उत्सवों में सन् 1980 से निरन्तर उपस्थित रहा। पूर्व का साहित्य (पर्चे आदि)उपलब्ध नहीं हो सके। 1980 के आमंत्रणों से कुछ छन्द प्रस्तुत हैं जिनका प्रभाव हृदय से दूर नहीं हो सकता।

लेखक या कवि हृदय जिससे जुड़ा हुआ है, उसी के सम्बन्ध में, कल्पनाएं, उसी विषय की तरंग उसमें उद्वेलित हुआ करती हैं। अतएव बुद्धि से उनमें सर्वभौमिक क्रांति लाने की क्षमता नहीं होती किन्तु जब हृदय सर्वेश्वर, सर्वनियंता, सर्वव्यापक से जुड़कर एक हो जाता है तब उस हृदय से निकली हुई वाणी जन सामान्य के हृदय से बिकारों के, दुर्विचारों के गढ़ को ध्वस्त कर बड़े प्रेम से उसे लोक कल्याण से जोड़ देती है। उन उक्तियों का प्रभाव अमिट हो जाता है।

श्री महाराज जी का जीवन श्री गुरु महाराज की सेवा निष्ठा में व्यतीत हुआ, जो उनके संकल्प रहे जीवनभर उसी की प्रतिष्ठा से अवकाश न पा सके। उस समय न तो बिजली थी न पंखे, दिनभर श्रम, रात्रि सत्संग, लीला, कथा, भगवन्नाम संकीर्तन घंटे दो घंटे विश्राम, उन्हीं घड़ियों में अपना भाव वे पद्यबद्ध कर लिया करते थे। श्री गुरु महाराज के सिय-पिय मिलन महोत्सव के निमंत्रणों में कुछ पद दृष्टव्य हैं, जिनमें धर्माचरण एवं भक्ति की भावना का वह मधुर पेय जिसे सुनकर, पढ़कर, प्रत्येक चेतना हृदय में ले जाने को उत्सुक हो जाती है, हृदयस्थ करती हैं, बीसवें वार्षिकोत्सव में कहते हैं शिष्य का जीवन लक्ष्य गुरुदेव की प्राप्ति है। उनके बिना कहीं

गति नहीं। गुरुकृपा ही शिष्य का शाश्वत कल्याण है-

श्री गुरुदेव दयालु दया करि दीनन देखी।
पापताप संताप दुःख दुखिया के पेखी॥
हे भव सिन्धु अपार शास्त्र श्रुति संत बखानो।
बिनु करुणा गुरुदेव कहूँ नाहिं ठौर ठिकानो॥
गुरु पूनौ सियपिय मिलन अष्टमी मंगल दायिका।
रामदास दुइपर्व में शिष्यन सदा सहायका॥

उत्सव का इक्कीसवां भाव है। अन्य किसी से जीवन के संकट क्लेश दुःखों की निवृत्ति गुरु-कृपा से ही संभव है।

बिनु करुणा गुरुदेव मिटे नहिं खटपट मन की।
अटपट जग का जाल चाल भई लपटप तन की॥
झटपट दर्शन करहु सिद्ध स्थल में आके।
चटपट होय प्रकाश ध्यान गुरु का उर करके॥
रामदास विश्वास गति गुरुचरनन में जो लगैं।
सिद्ध भूमि पटिया निरखि चरणामृत लो अघ भगैं॥

अगले पद में कहते हैं, जिसके प्रभाव को बिना पढ़े-लिखे भी- भुलाए नहीं भूलते, मगन होकर गुन-गुनाते रहते हैं- यथा भाव का मधुर संगम-

मंगलमय गुरुनाम जपत रसना मंगलमय।
मंगलमय गुरु चरित्र श्रवणमन दोउ मंगलमय॥
मंगलमय गुरुमूर्ति निरखि दोउ दृग मंगलमय।
मंगलमय सत्संग जहाँ श्रोता-वक्ता मंगलमय॥
रामदास मंगल सदा करह धाम में पग धरो।
मंगलमय पटिया निरखि मंगलमय जीवन करो॥

परम पूज्य गुरुदेव के आसन (पटिया) की सिद्धि अपनी विनम्र भावना में कहते हैं- तुम भी हो कृपा करें-

पटिया पर आसन कियो श्री गुरु वर्ष पचास।
जाको चरणामृत पिएँ होइ पाप का नास॥
होइ पाप को नाश भजन की महिमा भारी।
जड़ से होइ चेतन्य हरी जन पीड़ा भारी॥
रामदास पर करि कृपा पटिया तेरी आस।
पटिया पर आसन कियो श्री गुरु वर्ष पचास॥

गुरु महिमा में कहते हैं- गुरुदेव सर्वेश्वर है। चाहे उन्हें गुरु कहो चाहे राम दोनों एक ही हैं-

चाहे जैसे रामझ लो तीन बीसी और साठ।
तीन बीसी और साठ समझ में अब यह आई।
श्री गुरुऔर श्रीराम ब्रह्म दोउ एकहि भाई॥
श्रीराम कहें गुरु अधिक करो उनहीं की सेवा।
श्री गुरु कहें श्रीराम भजो देवन के देवा॥
रामदास श्रीराम जपु मानस को करो पाठ।
चाहे जैसे समझ लो तीन बीसी और साठ॥

संसार की सर्वश्रेष्ठ विभूति लक्ष्मी, ऐश्वर्य आदि मिल सकते हैं। किन्तु भगवदीय आनन्द की उपलब्धि केवल सन्त, सद्गुरु ही दे सकते हैं-

हरि सेतु हेतकर करि हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरि ही देत॥
पटिया है मंगलकरनि कल्पवृक्ष एहिकाल।
कामधेनु प्रत्यक्ष है दया करत तत्काल॥
दया करे तत्काल धोय चरणामृत लीजे।
श्री सिद्ध बाबा की प्रेम सहित परिकरमा कीजे॥
रामदास ते धन्य राम के नाम के रटिया।
दीनन को दुःख हरन श्री गुरु देव की पटिया॥

संसार में भटकने के दुःख से बचने के लिए श्री गुरुदेव एवं उनका आसन आश्रितों एवं भावपूर्वक नमन करने वालों के समस्त मनोरथ पूर्ण करता है।

अड़सठ तीरथ गुरुचरण नित उठि परवी होय।
सहजो चरनोदक पिएँ पाप रहे नहिं कोय॥
चरन पादुका की सरन नमन करूँ दिन रात।
दरस-परस अरु ध्यान ते सकल विघन मिटि जात॥
सकलबिघन मिटि जात तिमिर उनको लखि भाजत ।
कृपामूर्ति अति दिव्य सदा पटिया पर राजत॥
रामदास से दीन की दयामायी हे नात।
चरन पादुका की सरन नमन करूँ दिन रात॥

प्रभु श्री राम स्वयं श्रीमुख से कहते हैं- मोते सन्त अधिक...। तथा वाल्मीकि ऋषि कहते हैं- तुमसे अधिक गुरुहिं जियजानी।

भाव की अभिव्यक्ति करते हैं- उसी को यहां की भाषा में महाराज श्री इस प्रकार अभिव्यक्त करते हैं-

पहले सबसे बड़े हैं सन्त दूसरा नाम है।
तीसरे दस अवतार जिन्हें परनाम है॥
इनका भेद बताय करावत सेव हैं।
सब देवन के देव मेरे गुरुदेव हैं॥
रामदास ऊँचाकिया थानी चनते नीच।
समरथ श्री गुरुदेव हैं नश्वर जग के बीच॥

श्री धाम-वृन्दावन में सन्त का दर्शन तीर्थ सेवन से चौगुना फल देने वाला है। सद्गुरु की प्राप्ति अनन्त फल देने वाली है। श्री दादा गुरु सिद्ध परम्परा से अब तक का भाव अपना परिचय किस प्रकार प्रस्तुत किया- आश्चर्यचकित होना पड़ता है। देखिए-

तीर्थ गए एक फल संत मिले फल चार।

सदगुरु मिले अनेक फल कहे कबीर विचार॥
पटिया पर गुरुदेव ने किया निरन्तर जाप।
जाके दर्शन मात्र से मिटत पाप-सन्ताप॥
मिटत पाप सन्ताप तख्त पर दादा गुरु बैठे।
गोकुल से नूराबाद दर्श दे जन दुःख मैंटे॥
श्री लखनदास दास गुरुभाई जेष्ठ विराजत निशिदिन खटिया।
रामदास घर दरस तख्त खटिया, अरु पटिया॥

शिष्य के लिए सदा-सर्वदा गुरु-सेवा ही एक मात्र साध्य है, कर्तव्य है-

और कछू नहिं चाहिए गुरुदेवन के देव।
गुरुदेवन के देव करो गुणगान तिहारो।
नाम रूप श्रीराम कथा को रहो सहानो॥
सबमें देखों राम राममय सबको देखों।
द्वेष भाव मिट जाय सुफल जीवन तब लेखों॥
रामदास जी चाह यह करे तुम्हारी सेवा और कछू नहिं चाहिए गुरुदेव।

इकतीसवां उत्सव श्री चित्रकूट धाम में मनाया गया। उसमें चित्रकूट धाम महिमा में अपने दो पद दिए-

गुरु की महिमा अमित है, कहि न सके श्रुति शेष।
जिनकी कृपा कटाक्ष ते नंकहु होत नरेश॥
चित्रकूट धाम श्रीराम की अदालत है
मुल्जिम जहाँ आय बन्दगी बजाते हैं।
बन्दर चपरासी यारदाना हरजाना ले
पर्वत पे यात्रियों की हाजिरी कराते हैं।
मजिस्ट्रेट हैं महेश विनती की लाज
पाय पापों की मिसलें मन्दाकिनी डुबाते हैं।
प्रेम जज साहब कामद कृपा लुबने

क्यों न गरीबदास सब अपनी बनाते हैं।

दूसरा छंद-

चित्रकूट श्रीराम का सुख विलास है धाम।
वहाँ बरस बारह रहे हृदय अधिक अभिराम॥
हृदय अधिक अभिराम सत्संग जो पायो।
भक्ति ज्ञान वैराग्य कथा सुमिर अवध भुलायो॥
रामदास नित रहत जहँ लखन सहित सियराम।
चित्रकूट श्रीराम का सुख विलास है धाम॥

महाराज श्री के उत्सव में व्यक्त पूज्य श्री के अन्तस का एक-एक शब्द ब्रह्मसत्ता से परिपूर्ण गुरुदेव निमित्त गेय साधक के जीवन-लक्ष्य साच्चिदानन्द की प्राप्ति में समर्थ है ही, फिर पूरे उत्सव के भाव तो समीक्षा परिधि में आते ही नहीं हैं। मानव तन प्राप्त कर गुरुदेव की शरणागति नहीं हुई तो जीवन की दशा नौ दिन चलते-चलते अढ़ाई कोस ही पार कर सके।

अवसर थोड़ा जो चुके बहुरि पिये का लाख।
दौजन चन्दा देखि के उदयकता भरि पाख॥

नौ दिन तो चलते रहे पर चले अढ़ाई कोस। भगवान को छोड़कर जीवनभर श्रम दिया- अर्थ क्या निकला-

चले अढ़ाई कोस जन्म मानष को पायो।
भरतखंड सुधि भूमि ब्रह्मदेव हैं विचरन आयो॥
सन्तन को सतसंग गुरुसरनागत पाके।
करी जगत से प्रीति जगतपति को बिसरा के॥
रामदास या चाल पर कहा करत संतोष नौ दिन तो ...

बिना दूल्हे की बारात को दुल्हन कौन देगा? कहाँ कैसा सम्मान? अज्ञात अपरिचित स्थान पर भटकते हुए पहुँच जावें, दो-चार दिन के भूखे हों, संयोग से परसने वाला घर का हो, रात अंधेरी हो तो जो माल चाहो

यथेष्ठ मिलेगा। गुरुदेव की प्राप्ति में शेष क्या रह जाता है? कहते हैं-

चलो गुरु के देश ज्ञान जहँ पाइये।
जो गुरु रूठे होंय तो वो भी मनाइये।
सन्तन को सत्संग कथा नहिं राम की।
बिनु दूल्हा की बारात कहो कौन काम की।
घर को परसैया अहै और अंधेरी रात।
और अंधेरी रात जन्म मानुष को पायो।
भरतखण्ड रुचि भूमि ब्रह्म जहँ विचरन आयो॥
गंगा-यमुना निकट धाम दर्शन के काजें।
सन्तन को सत्संग रामगुन सुनि अघ भाजैं।।
रामदास श्री गुरु कृपा से भली बनी है बात। घर को परसैया-

प्रभु श्रीराम का नाम रूपवान होकर शरणागत की साज-संभाल करता है-

राम तुम्हारे नाम पर करों सुराई लौंन।
जाहि चला दो तुम सुभग ताहि भुलावे कौन?

पूर्व में भी निवेदन किया जा चुका है कि महाराजश्री का व्यक्तित्व संत, विद्वान, कवि, विधि-विशेषज्ञ आदि स्वरूपों में पूर्णता के शिखर को प्राप्त किए हुए है। अतः कोई भी बलशाली आकाश को मुट्ठी में नहीं ले सकता। अतः विवशता है, कुछ संकेत मात्र-परिचय ही दिया जा सकता है। सम्पूर्ण विवेचन से रचना के वृहद होने का भय है।

लगभग साठ वर्ष पूर्व की बात है, नूराबाद में छत पर सायंकालीन प्रभु चर्चा महाराजश्री के श्रीमुख से चल रही थी। समाप्ति पर भक्ति स्वरूपा बाई महाराज श्रीकिशनदासीजी ने पूछा - बाबा! हमें भी कुछ लिख दो? उसी समय महाराज श्री जैसे पहले से याद की हुई कविता सुनाने लगे। तुरन्त बोले-

बाई बोलीं एक दिन हमको कुछ लिख देहु।
बाबा बोले बात दो हिरदय में लिखि लेहु।

महाराज जी ने कहा राम नाम, रामायण दौऊ।

श्री बड़े महाराज श्री का सिय-पिय महोत्सव महाराज श्री ने प्रतिवर्ष निमंत्रण-निवेदन पद, छप्पय, दोहे आदि से ही किया- कुछ पद दृष्टव्य हैं-

जिसमें स्वयं प्रज्ञा नहीं उसे उपदेश क्या बोध दे सकेगा।

अन्धे को दर्पण दिखाने का श्रम व्यर्थ है,उसी प्रकार माया मोहित जो काम क्रोधादि में अन्धा बन गया है, उन्हें केवल गुरुकृपा ही मात्र उपाय है-

अन्धों के दरबार में दर्पण का क्या काम।
माया मोहित जीव का नहीं राम से काम॥
नहीं राम से काम मोह में भए जो अन्धे।
लोकबेद विधि त्यागी करत मनमाने धन्धे॥
रामदास गुरु शरण गति भज लो सीताराम।
अन्धों के दरबार में दर्पण का क्या काम॥

छत्तीसवें उत्सव के निवेदन में गुरुदेव का इतना महत्व वर्णित किया कि गुरुदेव के बिना अवतारी भगवान श्रीराम, कृष्णादि का निर्वात नहीं हो सका-

राम, कृष्ण सबसे बड़े गुरु उनहूं ने कीन।
बिना गुरु के जगत में फिरते होकर दीन॥

इस निवेदन में रकार और मकार के साथ राम-नाम महत्व एवं गुरुदेव की महिमा समझे बिना सर्वत्र धोखा ही धोखा है-

सब बरनन के शीश इव सोहे ररां।
दो सहस्त्र हैं जीभ शेष जी गावें ररां॥
कलि कुचाल से करें सुचाली राम को ररां।
रामदास जो चहें राम को रटना ररां॥
सब बरनन के शीश मुकुट सोहे मणि मम्मा।
जननी शिशु इव प्रेम निभावत है ये मम्मा॥

है रकार बड़ भ्रात अरजइव पहता मम्मा।
रामदास सिय कृपा चहो तो रटना मम्मा॥

अपना कल्याण दो से ही सम्भव है। वे ही राम हैं- वे ही गुरु हैं।

सत्य सगे गुरुदेव हैं कै भगवत कै सन्त।
और सबै सब सगभगे दगा करेंगे अन्त॥
दगा करेंगे अन्त देख लेना अजमा के।
कवि-कोविद विद्वान कह गए सब समझा के॥
रामदास मैं क्या कहूँ कहि गए सन्त अनन्त।
सत्य सगे गुरुदेव हैं कै भगवत कै सन्त॥

इस उत्सव के निवेदन में हृदय की चिज्जड ग्रन्थि केवल गुरुदेव ही खोल कर मुक्त कर सकते हैं। यथार्थ ज्ञान वहीं से प्राप्त होता है। रकार एवं मकार राम-राधेश्याम, रब, मुहम्मद सभी में व्याप्त हैं।

चलो गुर के देश ज्ञान जहँ पाइये।
संतन के संग बैठ रामगुन गाइये॥
जड़ चेतन की ग्रन्थि सन्त संग खोलना।
इतना दें गुरुदेव फेरि कछू नहिं बोलना॥
रर्रा तो रब आप हैं मम्मा मोहम्मद जान।
दोइ हरफ का माइना सारा वेद-पुरान॥
सारा वेद पुरान रर्रा श्री राधाभाई।
मम्मा माधव जान हमारे सदा सहाई॥
रर्रा मम्मा इष्ट मम रामदास के प्रान।
दोइ हरफ था माइना सारा वेद पुरान॥

इस निवेदन में अपने को साकेतवासी मानकर कहते हैं- अपना स्वरूप परिचय दें। हम वासी वा देश के जिसे कहत साकेत-

जिसे कहत साकेत श्रुती जाके गुन गावें।

शंभु शारदा शेष महत्व कहि अन्त न पावें॥
सत्यधाम बैकुण्ठ बहिस्त से परे विराजें।
रामदास, सत, चित नित्य धामन सिर साजे॥
हंसन की कहां चले परमहंसहुललचावें।
बिना कृपा श्रीराम स्वप्न में दरशन पावें॥
त्रिगुण त्रिदेव, त्रिदेव काल की गति जहँ नाहीं।
दिव्य किशोर स्वरूप भक्त सुखसिन्धु समाहीं॥
नाम रूप गुण भेद जहाँ कतहूँ नहिं दरसें।
होई अभेद पुनि भेदभाव से सुखमय सरसे॥
रामदास पहुंचे वहीं नहिं काहू सो हेत।
हमवासी वा देश के जिसे कहत साकेत।

इसमें भिक्षुक के स्वरूप को उपदेश दिया है-

भिक्षुक भीख न मांगहीं वेत धनिन उपदेश।
देहु देहु हम नादयो लखो हमारो वेष॥
लखौ हमारो वेष फिरत है दर-दर मांगत।
सपनेहूं नहिं चैन फिरत हैं घर-घर मांगत॥
रामदास श्री राम कहं कर दे दान हमेश।
भिक्षुक भीख न मांगहीं देत धनिन उपदेश॥

इस उत्सव के निवेदन में गुरुदेव की महिमा में जल बिन्दु से मोती बन जाने, गुरुदेव का सीप का आश्रय, भगवतकथा एवं भगवन्नाम की महिमा लोकवाणी में प्रस्तुत की है।

क्या कतरे तुझमें आव नहीं ना चीज न बन आला बनजा।
निकल सदफ की जुल्मत से तू लूलू से लाला बनजा।।
स्वाँति बूँद गुरु शब्द है सीप जगत का जाल।
किंचित श्रवनन में पड़ा हो गया लालो लाल॥

त्राहि-त्राहि रक्षा करो विनय करों गुरुदेव।
सन्त सभा अनुपम अवध निशि दिन ताकी सेव॥
निशिदिन ताकी सेव कथामृत रस को पीओ।
चिन्तामणि हरिनाम गान कर सुख से जीओ॥
रामदास पर करि कृपा पूर्ण करौ यह देव।
त्राहि-त्राहि नक्षा करो विनय करों गुरुदेव॥

इस निमंत्रण में कौए से हंस बनना, दिया हुआ व्यर्थ नहीं जाता है। शिशिर पुराने पत्ते देता है तो नए श्रृंगार से सजता है। इन्हीं का सार-

कौआ से हंस बनते हैं मुर्शिद के पास में।
तल्व ए दीद है तो गुरुद्वारे में आके देख॥
हरि गुरु आदि जुगादि हैं ये जानत सब कोइ।
सदगुरु की सेवा किये सबकी सेवा होइ॥
ऋतु बसन्त याचक लखो तरुवर दीने पात।
या तो भए नवीन पुनि दियो व्यर्थ नहिं जात॥
राम हमारे इष्ट हैं हंस वंस अवतंस।
इनकी कृपा कटाक्ष से जीव राम का अंश॥
जीव राम का अंश गुरु शरणागत आते।
भक्ति ज्ञान वैराग्य संत संगत में पाते॥
रामदास गुरु कृपा से कौआ बनते हंस।
राम हमारे इष्ट हैं हंस वंस अवतंस॥

इस निमंत्रण में लक्ष्मी का चलन, साधु आचरन, पटिया को माँ मानकर रक्षा की गुहार की है-

बनी रहे ना लक्ष्मी बनी रहेगी बात।
भगवत प्रेमी चेत लो कर लो ऊँन चेताथ॥
साधू भीख न मांगहीं जो माँगे से झाँड।

सती न पीसे पीसनौ जो पीसे सो रीड़॥
पितु समान है पादुका, पटिया मातु समान।
इन दोउन को जगत में फैलो सुजस महान॥
फैलो सुजस महान दुःखीजन रोते आए।
हँसते हुए गए घर मनवांछित फल पाए॥
रामदास निज जानिके नित्य करावो सेव।
त्राहि-त्राहि रक्षा करो गुरुदेवन के देव॥

इस उत्सव निवेदन में सन्त महिमा का अनुपम दृष्टान्त है-

सन्त सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल।
दरसपरस अरु वचन सुनि मिटत तापत्रय सूल॥
सब साधन सिर मौर राम का नाम बताते॥
रामदास गुरुकृपा से मिलत सन्त पग धूल।
सन्त सभा ....

जो बात दवा से हो न सके, वह बात दुआ से होती है। जब कामिल मुर्शद मिलते हैं, तब बात खुदा से होती है। इस निवेदन में प्रतीत होता है, जीवन के अनुभव का सार। दीक्षान्त आशीष के रूप में चेतावनी देकर बरसाते हैं-

पलटू सतसंगति मिली खेलि लेहु दिन चारि।
फिरि-फिरि नहीं दीवाली दीपकली जै बारि॥
इश्क वाले इश्क को रखना सँभाल के।
मुर्शिद भी मजबूर हो तुम को मनाने के लिए॥
सन्तराम के खजांची इन पैघन धरि देहु।
दिन दूनो निसि चौगुनो अगले जनम में लेहु॥
जिसको जरूरत हो ढूंढे खुद को।
हमारे लिए जहां में गुरु ही खुदा हैं॥

मस्तक पर गुरुदेव हैं हृदय विराजत राम।
सियपिय मिलन महोत्सव पूरन होवे काम॥
पूरन हौवे काम भक्ति का बाजे डंका।
घट-घट व्यापक राम रहें नहिं मन में संका॥
रामदास करुना करो गुरुदेव का देव।
सन्त भक्त और विप्र के नित चरनन की सेव॥
रामराम तू कहुरे भौंदू। बोलन तारा तुरक न हिन्दू।
कह कबीर हम जुग-जुग कही जबहीं चेतो तबही सही॥

सरकार का यह अन्तिम निवेदन है। इसमें सार संक्षेप में सन्त, भक्त, गुरुदेव, उनकी जूती की महिमा जड़ भोगों का त्याग, सत्संग-महिमा एवं मनोनिग्रह की भावना का मधु बरसा दिया है। लगता है अन्तिम समष्टि उपदेश है-

दुनिया उन पर राज है राजा उन पर सन्त।
सन्तन उन पर सन्तदास हैं कोउ राम कहन्त॥
फिना फिल्लात का यारौ फिनाफिल शेख जीना है।
ये उसकी अँगूठी है तो ये उसका नगीना है॥
सद्‌गुरु की मानी नहीं जड़ भोगन की आस।
आए थे हरि भजन को ओटन लगे कपास॥
मूँड़-मूड़ाए कहाँ कमंडलु काठ का।
कहा भए जो पढ़े वेदबहु पाठ का॥
कहा भए जो जिए बरस सौ साठ का।
जो नहिं आया हाथ पसेरी आठ का॥

*****

गुरु अष्टक

(1)

गुरुदेव त्रिदेव हैं इष्ट सदा, गुरु मूरति मंगल कारिनी है।
चरणामृत पान कियो गुरु को, ये ज्ञान और बुद्धि प्रकाशिनी है।
सेवा करो हरी संतन की, गुरुदेव की सीख निभावनी है।
गुरुदेव के धाम की धूरि लगाइके, नेत्र की ज्योति बढ़ावनी है।

(2)

शरणागत जान सदा अपनो, किरपा करके अपनाइये जू।
तन भोगी है रोगी है मेरो प्रभू, अपनो लखि ना विसराइये जू।
करुणाकर दीन दयाल है नाम, करि सत्य सबै दिखराइये जू।
हरि नाम सजीवन मूरि अहै, निशि-वासर पान कराइए जू।

(3)

दीन दयाल है नाम प्रभू सो, दया हम पे करिए-करिए।
अधहारी नाम है सत्य करो, संताप मेरे हरिए-हरिए।
ज्ञान विराग अरु भक्ति मेरे, उर अन्तर में भरिए-भरिए।
शीश झुका पद पंकज में, कर कंज सदा धरिए-धरिए।

(4)

सत्संग कथा हरि भक्तन की, यह भूलहुं नाथ छुड़ाइयो ना।
जो द्रोही अहैं हरि भक्तन के, सपनेहुं तिन्हें पास पठाइयो ना।
हम जीव हैं भूल करें तो करें, पर आप कबहुं बिसराइयो ना।
हम हैं तुम्हरे तुम हो हमरे, गुरुदेव यह नातो भुलाइयो ना।

(5)

गुरुदेव के द्वार पै स्वान रहें, वे चारों पदारथ पावत हैं।
राम कथा हरि नाम सुने, सहजहि भवफंद छुड़ावत हैं।
झूठन पाय गुरु हरि की, रसना रस पान करावत हैं।
गुरुदेव तुम्हारे द्वारे पड़े,
तुम्हरे यश गाय सुनावत हैं।

(6)

अंधकार में दिव्य प्रकाश करे, गुरु शब्द को अर्थ बतावत हैं।
(जो) मोह निशा में सोए हुए, तिन्ह को दे ज्ञान जगावत हैं।
मेरो कहा दुर्भाग्य अहै, सब में नहिं राम लखावत हैं।
करुणा करिके दुःख दूर करो, विनती गुरुदेव सुनावत हैं।

(7)

देव सबै त्रैदेव सबै, नरदेव सबै श्रुति संत बखानो।
मातु-पिता हितु स्वामि सखा, संबंध सबै गुरुदेव सों मानो।
नश्वर रूप हैं नाते सबै, गुरुदेव को सत्य सनातन जानो।
छोड़ि के द्वार श्री गुरुदेव के, और कहूं नहिं ठौर ठिकानो।

(8)

नर देह को पाइके प्रभु जी, हमने सब भांति को नाच है नाच्यो।
शांति कहीं सपनेहुं न मिली, सब देव-कुदेवन सों बहु जांच्यो।
कीन्हो भरोसो अनेकन को, निकसो सबको है अन्त में कांच्यो।
और को आसरो फासरो खासरो, आसरो श्री गुरुदेव को सांच्यो।
अष्टक श्री गुरुदेव को पढ़े सुने मन लाय,
श्री रामदास गुरुदेव जू करिहै सदा सहाय।

*****

श्रीराम कथा एवं नामामृत दान

असार भूते संसारे सारमेत दजात्मज।
भगवद् भक्त संगश्च हरि भक्ति स्तितिक्षता॥

(इस असार संसार में तीन ही बातें सार हैं- भगवद भक्तों का संग, भगवान विष्णु की भक्ति और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को सहन करने का स्वभाव)।

तात्विक दृष्टि से तो देव दुर्लभ शरीर केवल परमात्मा की प्राप्ति के लिए ही मिला है। हम देखें जहाँ अमृत के कुण्ड, कल्पवृक्ष, चिन्तामणि, वैहायस- विमान रंभादि स्वर्गीय अप्सराएँ, सदा तरुण जीवन जिन देवताओं को मिला है वे तुच्छ मानकर मानव बनने की कामना करते हैं। क्योंकि देवता बनकर भी भोग तो किया जा सकता है किन्तु योग नहीं। भगवद् भजन देवता भी नहीं कर सकते, इसलिए गोस्वामी जी तो कहते हैं-

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जाचत जहि चराचर तेही॥

चर-अचर जितने भी जीव हैं, सभी इस शरीर (मानवतन) की कामना करते हैं - देवताओं के स्वर में सद्ग्रन्थ भी साक्षी हैं-

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुरदुरलभ सद्र गन्थन्ह गावा।
यह भव बारिधिसे संतरण का बेड़ा है नर तनु भववारिधि कहँ बेरो॥

बेड़े का यथार्थ अर्थ वह यान जिस पर नगर बस जाय, वाहन-यान-सवारी सेना के दलबल के साथ स्वयं तो क्या सबको पार करे- अतः लक्ष्यार्थ कहा-

जो न तरै भवसागर नर समाजु, अस पाइ।
सो कृतनिन्दक मन्दभति आत्महरन गति जाइ॥

इस लक्ष्य का संधान करने में तपोवीर महाराजश्री जैसे व्यक्तित्व ही आदर्श गुरु हैं। अपनी भगवन्नाम कथा निष्ठा से तरनतारन बन गए, क्या

बन गए, उनके प्रभु जानें ? कहा तो यहाँ तक है-

बारक नाम कहत नर जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥

जिस समय आपकी यह भगवतकथा भगवन्नाम की यात्रा चल रही थी, तो उसी क्रम में राजस्थान की सीमा से उत्तर प्रदेश में प्रवेश किया। आपकी भावधारा की गंध और मधुरिमा की लहरें जनमानस में ज्वार-भाटे की भाँति उठीं, तो आपकी नगर में शोभायात्रा की झाँकी अवर्णनीय है। आगरा में जो उस समय की महान विभूतियाँ पं. जवाहरलाल नेहरू इस देश के सर्वप्रथम प्रधानमंत्री उनके चाचा श्री राजनाथ कुंजरू,श्री हृदयनाथ कुंजरू कीर्तन में बेसुध होकर नाचते हुए चले। पूरे आगरा नगर का वातावरण श्रीराममय श्रीराम-प्रेममय हो गया। उस समय शास. चिकित्सालय के अधिकारी डॉ. व्यास थे, उन्हीं को आगरा के नागरिकों ने कथा-कीर्तन के लिए आगे किया। उन्हीं के यहाँ कीर्तन कथा हुई। जूतों की देख-रेख सेवा के लिए डॉ. व्यास स्वयं खड़े हुए। अनन्तर इस सेवा का रूप या चौदह हजार जूता-जोड़ी उस समय गिने गए। सभी विभागों के सभी कर्मचारी अधिकारी सम्मिलित हुए। श्री महाराजश्री ने व्यास के लिए एक दोहा लिखा-

पढ़े करी जब डाक्टरी हुआ न इतना नाम।
सात दिना हरि नाम से व्यास हुए सरनाम॥

यह भगवन्नाम मृत प्रवाह की मधुर धारा प्रवाहित होती हुई जहाँ से भी चली जैसे मधुमक्खी मधु पर टूट पड़ती है, उसी भाँति जिनने जहाँ सुना, वहाँ से रासबिहार में मन-मोहन की मुरली पर मुग्धा गोपियों की भावधारा में अथवा-

धाए धाम काम सब त्यागी। भवहुँ रंकनिधि लूटन लागी॥

लगे हाथों सभी को अपनी वाँछित निधि खुली मिल गई है, इससे अधिक लाभ और हो ही क्या सकता है।

सन् 1932 में यह यात्रा खेरागढ़ में जो आगरा की तहसील है, पहुँची।

आज भी उसके दृष्टा कुछ प्रेमीजन हैं, जो सुनाते-सुनाते भाव-विह्वल होकर,मूक रह जाते हैं। जो जिस व्यापार में था उसने वह सब छोड़ा, गरीब-अमीर, छोटे-बड़े और तो क्या तहसील के अधिकारी तहसीलदार आदि सभी कर्मचारी, पुलिस का पूरा बेड़ा बेसुध नाचते हुए महाराज श्री की यात्रा में कीर्तन मग्न होकर चल रहे थे। बाजार में रहने वाली पण्यबालाएँ, गायिका, गंधर्व वह भी भाव-निमग्न किन्हीं ने रुपयों की माला, किन्हीं ने कीमती मेवा, किन्हीं ने जलेवी, किन्हीं ने इमरती समस्त बाजार की मिठाई एवं फल महाराज श्री पर बलिहार हुए। महाराज स्वयं उलटे चल रहे थे ताकि प्रेमी भक्तों के हृदय पर भाव में भगवन्नाम प्रेम का प्रवाह उत्तरोत्तर बढ़ता रहे।

तदनंतर वहाँ का भक्ति भाव इस माला का सुमेर बनकर सुशोभित हुआ। महाराजश्री ने वहाँ करह के समान ही मन्दिर निर्माण कराया जिसे देवी मन्दिर नाम से प्रसिद्धि मिली है। श्री बड़े महाराज श्री की गादी एवं आवास के साथ आधुनिकतम सुविधाओं से सम्पन्न तीर्थ है जो दर्शनीय हैं। दूसरा स्थान हनुमान मन्दिर नाम से प्रसिद्ध है। महाराज श्री के दिव्य भाव का आकार उनकी श्रद्धा और प्रेम का मूर्तरूप तीर्थ है। सर्वाधिक लगाव उनकी कृपा एवं वात्सल्य आशीष का भी सर्वश्रेष्ठ है। यहाँ प्रारम्भ से ही महाराज श्री का जन्मोत्सव सानन्द मनाया जाता रहा,मनाया जाता रहेगा।

निरन्तर भगवन्नाम, भगवतकथा, गुरुसेवा, सन्तसेवा आज भी उसी रूप में चल रहे हैं। यह उनकी कृपा और स्नेह का अगोचर कर-कमल है, जिसकी अक्षयछाया कभी नहीं मिटेगी।

*****

प्रेत-मुक्ति

श्रीमद् भागवती वार्ता सुराणा मपि दुर्लभाः । प्रेतपीड़ा विनाशिनी।

भगवतकथा एवं भगवन्नाम दोनों ही देवताओं को भी दुर्लभ हैं। प्रेतपीड़ा का सर्वथा नाश करने वाले हैं।

कुछ ऐसी प्रत्यक्ष घटनाएं हैं, जिन्हें देखकर, सुनकर, शास्त्र का यथार्थ स्वरूप साकार ही नहीं होता, हमें हमारे यथार्थ कर्तव्य का लक्ष्य बोध कराता है। काल, कर्म, गुण, स्वभाव का सम्पूर्ण ज्ञान सम्मुख तस्वीर बनकर दिखलाई देता है। प्रेतयोनि में पहुँचे हुए किस प्रकार दुःखी होते हैं। उनका पेट तो होता है हाथी के पेट के समान, मुँह सुई की नोंक के बराबर, जीवनभर भूखे ही रहते हैं, अपनी व्यथा- वेदना किसी से कह नहीं सकते, बैठ सकते नहीं, ऐसी असह्य पीड़ा भोगने विवश होना पड़ता है जिसकी भगवतकथा से मुक्ति हुई। भागवती कथा में अर्चनीयचरण श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज ने भदान की भागवत कथा का प्रत्यक्ष प्रमाण लिखा है- कि कथा श्रवण के पश्चात् गंगा की बीच धारा से आवाज आई मेरी भागवत कथा सुनकर गति हुई। आप सब धन्य हैं। मैं कृतार्थ हुआ। यहाँ महाराज श्री ने जहाँ-जहाँ प्रेतपीड़ा का अनुभव किया,उन्हीं के द्वारा-

देव दनुज नर नाग खग प्रेत पितर गंधर्व।
वन्दौं किन्नर रजनिचर कृपा करहु अब सर्व॥

दोहे से श्रीराम कथा गान सम्पुटित कराई। अनेक स्थानों पर भक्तों ने अनुभव किया और कर रहे हैं। महाराजश्री धनेले मंदिर पर रह रहे थे। इस समय वहाँ महात्मा तिलकदास जी रहते हैं। उन्होंने आपसे अपनी कष्ट कथा सुनाई, यहां रहते हैं तो रात में, दिन में कई प्रकार के विक्षेप आते हैं। कोई दिखलाई देता है, कभी पत्थर बरसते हैं कभी रोने की ध्वनि, कभी विचित्र आवाजें, चीत्कार सुनाई पड़ता है। आपने सब समझा श्रीराम कथा

गायन हुआ। समाप्ति पर पीपल का वृक्ष ऐसे हिला जैसे झँझावात का झोंका आया हो या वृक्ष गिरना चाहता है। थोड़ी देख बाद शान्त हो गया। महाराजश्री ने कहा- जो था उसकी गति हुई, अब कुछ नहीं होगा। तबसे लेकर आज तक वहाँ पूर्ण शान्ति है। कभी किसी को ऐसा अनुभव नहीं हुआ।

*****

भगवती अन्नपूर्णा का अमित अनुराग

स्वयं पंचमुखः पुत्रो गजानन षडानन।
दिगम्बरं कथं जी वेदन्न पूर्णानि चेद गृहे॥

स्वयं पाँच मुख रखने वाले शिव, एक पुत्र हस्तिमुख गणेश, दूसरे छः मुख वाले कार्तिकेय ऐसी स्थिति में सदा नंगे रहने वाले कैसे जीते यदि उनके घर अन्नपूर्णा न होती।

रचना विज्ञान की दृष्टि से मानव शरीर में पाँच कोष हैं। उनमें अन्नमय कोष प्रधान है। अन्न के बिना सुपुष्ट जीवन की कल्पना संभव नहीं है। स्वार्थ प्रधान या संग्रही प्रकृति के लोग प्रायः संचय को गौरव मानकर जीवनभर संग्रह में व्यस्त रहते हैं। उदार प्रकृति महात्मा जड़ चेतन को अपने इष्ट का वास मानकर दिव्य रूपी ईश्वर भाव से संतुष्ट करने में ही अपने को कृत-कृत्य मानते हैं। इस भावना वाले पुण्यात्माओं की गौरव गाथा शास्त्रों में भरी पड़ी है।

एक कथा आती हैं, जब भगवान शंकर कैलाश छोड़कर श्मशान में जाकर नंग-धड़ंग, चिता भस्म लपेटे, अस्थि माला गले में डालकर बैठे थे, संयोग से देवताओं को उनकी आवश्यकता हुई। पता लगाते-लगाते वहीं

पहुँच गए। शिव के इस अशिव वेष को देखकर विस्मयविमुग्ध देवता बोले- यह अपावन, कुवेश क्यों?

पूछें देव अहो शिव अशिब वेष क्यों कीन।
याचक भय के कारन असवाना धरि लीन।।

विनोद-विहार की कथा है, कहीं याचक भाव का ब्याजनिन्दा से संकेत किया है कि निरन्तर माँगने वाले से अवढर भी डर सकता है। कहीं-कहीं ऐसा भी मिलता है कल्प वृक्ष से चाहे जो माँगो, देगा किन्तु उसका ही स्वरूप उसका अंश माँगो कि अपने घर पर ही हम कल्प वृक्ष लगा लेंगे, तो न देगा। कामधेनु भी चाहे जो माँगो, देगी। किन्तु अपना रूप नहीं। तो दोनों के नाम पर यथार्थ का अभाव सा दिखलाई पड़ता है किन्तु महाराज श्री का दान इतना निराला कि कभी-कभी विद्वान से लेकर सामान्य ग्रामीण या नगर-नागरिक देखकर आश्चर्य चकित रह जाते थे। उन पर भगवती सीता, माँ लक्ष्मी एवं अन्नपूर्णा तीनों की ही पूर्ण कृपा थी।

लगभग सत्तर वर्ष पुरानी बात है, उस समय पंडित प्रवर श्री विजय रामदास जी खनैता गृहस्थ थे। समीप के ग्राम छिरैटा में उनका श्रीमद् भागवत एवं यज्ञ का कार्यक्रम था। महाराज श्री उसमें पधारे। आपके पहुँचते ही क्षेत्र में दर्शन करने का ज्वार उठा, आबाल बृद्ध नर-नारी आने लगे। भीड़-भाड़ का जमावड़ा होने लगा। भण्डारे के एक दिन पूर्व आप स्वयं ही सिर पर साफा लपेटे घर-घर जाकर सबको (चूल्ह) सपरिवार निमंत्रण दे आए। प्रातः काल होते ही अपार जन-सागर को देखकर छिरैंटा वाले सज्जन जो प्रबुद्ध नागरिकों में माने जाते थे, पंडित जी को लेकर महाराज श्री के समीप गए, घबराए हुए बोले महाराज! अब क्या करैं? जनता से हाथ जोड़कर पूछा तो बोले हम अपने आप ऐसे ही थोड़े चले आए हैं, साधू ने घर-घर जाकर चूल्ह का निमंत्रण किया है। महाराज जी बोले- गुरुदेव सब दया करेंगे। भण्डार गृह में दीप प्रज्वलित किया, एक सन्तनाम जप करने

लगे। आप वहीं विराजे रहे। रातभर भण्डारा चला। अन्तिम सीताराम बोली गई। कहा महाराज अब कोई प्रसाद को शेष नहीं रहा। जैसे ही रसोई भण्डार में चद्दर उठाया, तो केवल एक पला मालपुआ एवं भगौना खीर, साग शेष रहा। अन्नपूर्णा की यह विलक्षण कृपा महाराज श्री पर सदा रही। जीवन भर भण्डारे किए, अगनित अतिथि याचक आए किन्तु कभी कोई ऐसा अवसर नहीं आया जब यह कहना सुनना पड़ा हो कि अमुक वस्तु का अभाव हो गया।

इसी प्रकार की घटना है, ग्राम किसन की गढ़िया जिला भिण्ड की। महाराज श्री के कृपापात्र शिष्य श्री बजरंग दास जी उस समय वहीं स्थान के अधिकारी थे। सन् 1950 में माघ के महीने में उत्सव किया, जिसमें श्री महाराजश्री भी पधारे। तीन दिन सत्संग कार्यक्रम पश्चात् खीर, मालपुआ से भण्डारा हुआ। मध्यान्ह में पंगत की सीताराम हुई। थोड़ी देर बाद गाँव वाले आपस में व्यंग्य करने लगे, हो गई भंडुरिया। बजरंगदास घबरा गए। महाराज श्री के चरणों में गिर गए - बोले अब क्या हो? महाराज श्री ने कहा जाओ, तुम तो पंगत सेवा में रहो। आपने भण्डार गृह में दीप चेतन्य किया, दो सन्त रामनाम जप पर बिठा दिए। आप बोले दरवाजे पर हमारी कुर्सी रखो। आप बिराज गए। बोले- गृहस्थ अब परोसकारी नहीं करें, सन्त सेवा करें। आज्ञा शिरोधार्य की। सन्त जन ही परोस करने लगे। रात्रि के बारह बजे तक अखण्ड पंगत चली। सीताराम बोली गई। कोई शेष नहीं। दूसरे दिन प्रातः काल महाराजश्री ने बजरंगदास जी से कहा बाल भोग का निमंत्रण करो। सुनते ही हक्के-बक्के रह गए। कल तो आपकी कृपा से लाज रह गई। यह क्या लीला है? महाराजजी ने प्रसन्न होकर कहा जाओ, बुलावा दो। आबाल-बृद्ध, नर-नारी फिर आने लगे। उस दिन भी दिनभर भण्डारा चला। जब सायंकाल इधर वापस आने लगे। भण्डार गृह खोला गया, एक टंकी खीर और दो झावे मालपुआ रखे हैं इन्हें अब बांटते रहना।

ऐसी अनेक घटनाएं हैं। ग्रन्थ के कलेवर का विचार कर पाठकों से प्रार्थना है क्षमा करें। प्रतिवर्ष प्रति उत्सव के भण्डार हुए किन्तु निरन्तर 80 वर्ष के लम्बे काल में ऐसा अवसर कभी नहीं आया कि किसी वस्तु का भण्डारे में अभाव रहा हो। शेष तो सीमा से अधिक रहा ही कभी -कभी तो पत्तल उठाने वाले के पास सौ-सौ मन से ज्यादा मिठाई उच्छिष्ट में से मिली।

*****

अप्रतिम प्रतिभा

मुरैना जिले की पोरसा तहसील है। वहाँ पर राजमार्ग पर ही थरा ग्राम है। वहाँ के निवासी ठा. चरनसिंह तोमर, महाराज श्री के साथ अध्ययन करते थे। कुछ समय उन्हें सहाध्यक्षी होने के साथ अन्तः स्नेह भी मिला। उन्होंने सुनाया कक्षा में जगमोहन नाम का विद्यार्थी विद्यालय तो नित्य जाते थे किन्तु साथ में पुस्तकें, पट्टी, लेखनी कुछ भी नहीं लाते थे। कुछ दिन बाद दूसरे विद्यार्थियों ने आपस में चर्चा की, निर्णय लिया कि यह कभी अपना बस्ता साथ नहीं लाता, आज गुरुजी से इसकी शिकायत करेंगे। यही हुआ अध्यापक के आने पर सभी ने एकस्वर से कहा पंडित जी मोहन कभी अपना बस्ता साथ नहीं लाता, न कुछ लिखता-पढ़ता है। गुरुजी ने पूछा क्यों ? मोहन तुम अपना बस्ता, पट्टी, कलम कुछ नहीं लाते। बड़ी विनम्रता से उत्तर दिया। हाँ पंडितजी नहीं लाता। पर आप जो पूछना चाहें, पूछ लें। अध्यापक ने पूछा ? कल क्या पढ़ा आपने तुरन्त ब्लैक बोर्ड के पास जाकर वह सब लिख दिया, जो जिस विषय में पढ़ाया गया था। कौतुक वश पिछले

और दिनों के बारे में पूछा, तो वही सब दिन प्रतिदिन के हिसाब से लिखकर बतला दिया।

कभी-कभी देखकर दंग रह जाना पड़ता है, ऐसी विभूतियों में शैशव में कितनी अपरिमित शक्ति होती है। सहसा आश्चर्य ही होता है। मस्तिष्क में ऐसे अद्‌भुत पुरुषार्थ, विलक्षण सफलताएं कैसे सहज ही प्राप्त हैं ? ऐसी प्रतिभाओं के द्वारा किया जाने वाला प्रत्येक लोककर्म भी अलौकिक प्रतीत होता है। उनकी छाया के दर्शन से भगवद् विभूति अनुभूत होती है। उन्हें पाकर शंकाएं स्वतः निर्मूल हो जाती हैं।

वृणुतेहि विमृश्याकरिणां गुणलब्धा स्वयमेव सम्पदः।

सद् विद्या एवं लक्ष्मी विवेकी महापुरुष का स्वयं वरण कर लेती है। बादलों के संयोग से सागर का जल चाहे जितना ऊँचा उठ जाय, पृथ्वी का उच्च भू-भाग, पर्वत-शिखर, कानन-उद्यान, सर-सरोवर, सरिता अन्ततः उसे सागर में ही पहुँचकर विश्राम मिलता है। अमृत का अधिवास चन्द्रमा ही है, गन्ध का आश्रय पुष्प ही है। इसी प्रकार विद्या भी प्रतिभा के आश्रित ही रहती है, फलवती होती है। इसीलिए श्रीमद् भागवत में आता है - विद्या भी पूर्वजन्म कर्मानुसार पूर्व विहित है-

आयुकर्मच वित्तंच विद्या निधन मेवच।
पंचैतानिहि सृज्यन्ते गर्भस्थ स्यैव देहिनः॥

महाराज श्री भी पूर्व के चिर संचित सुकृत संस्कारों से विद्यार्थी जीवन में एक प्रेरणा बनकर रहे हैं।

*****

श्री 108 परमहंस जी महाराज
(गोकुल)
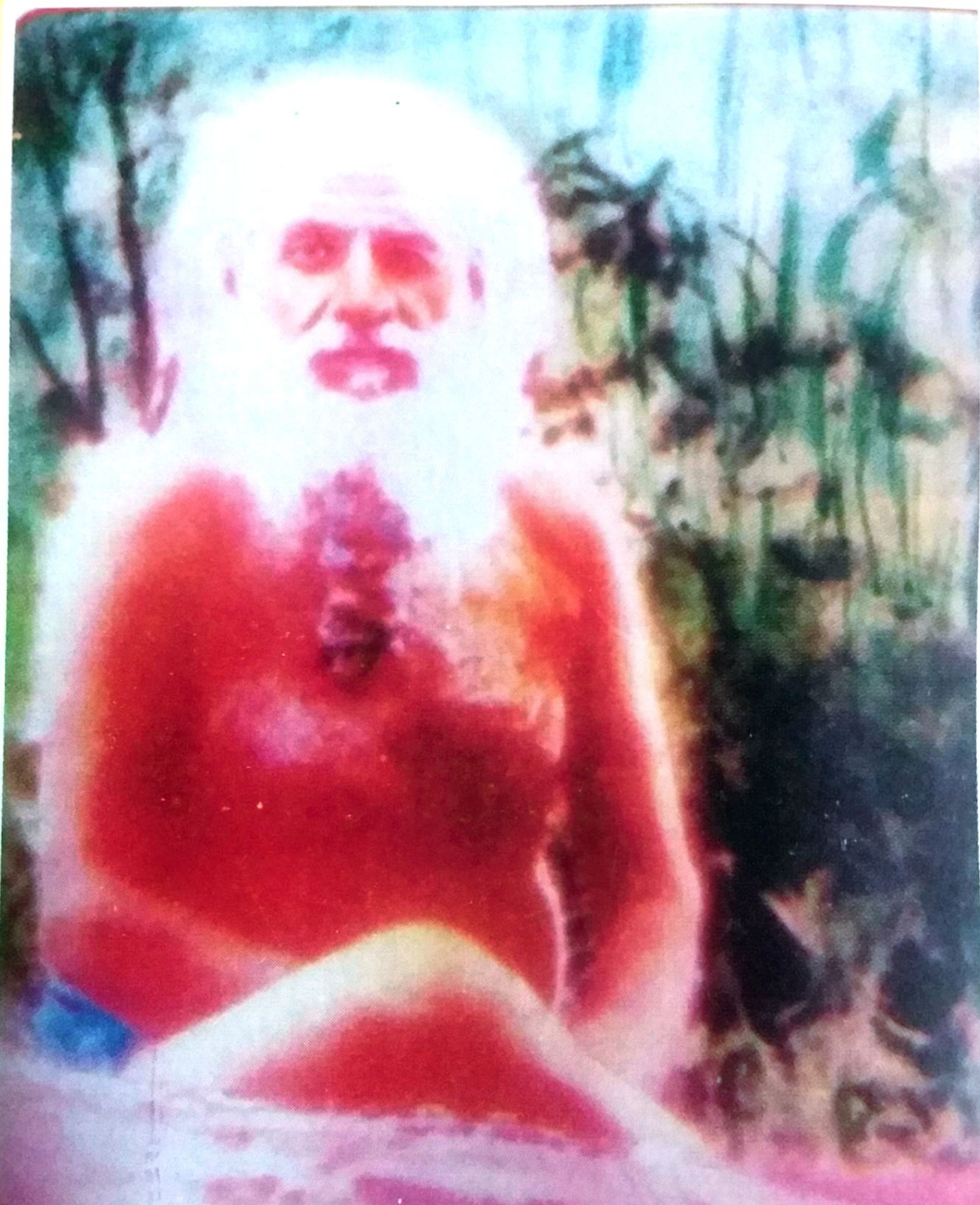
श्री 108 तपसी श्री सीताराम दास जी महाराज
(नूराबाद, मुरैना)

भाव ही भगवान

न देवा भृणमये काष्ठे न स्वर्ण रजतेपिका।
भावमयः सर्वे देवाः तस्माद भावोहि कारणम्॥

वस्तुतः भाव ही भव का कारण है, भाव ही मोक्ष है, भाव ही भगवान है जो सदा-सर्वदा भगवान के भाव में ही रमा रहता है, उसे सारा जड़ चेतन वही परम आराध्य नजर आता है। यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। अनेक सन्त, पुजारी, भक्तों द्वारा भगवान के विग्रह से प्रत्यक्ष चर्चा वार्ता सामान्य मानवों जैसी लीला की हैं, कर रहे हैं।

श्री महाराजश्री के ज़ीवन की ऐसी अद्‌भुत अनेक घटनाएँ हैं जिनमें उनके इष्ट की कृपा एवं साधना की सिद्धि प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ती है। संयोग से खेरागढ़ के समीप विश्रामपुर पधारे। उस समय मिट्‌टी का करुआ पात्र एवं वस्त्र के नाम पर केवल एक बोरी, जिसमें छेद कर लिया था, दिन में गले में डालकर उसे पहन लेना, रात्रि में उसी का बिस्तर बटी, रजाई, कम्बल पूरा वस्त्र व्यवहार उस टाट के बोरे से चलता था। श्रावणी पूर्णिमा के दूसरे दिन हमारे इस मध्य प्रान्त में भुजरिया मेला होता है। घर-घर से बेटियाँ अपनी साज-सज्जा के साथ किसी जलाशय तक अपने सिर पर उन भुजरियों (जौ के पौधों) को ले जाती हैं। उनमें से कुछ तो जल में प्रवाहित कर देती हैं, कुछ बचाकर साथ में ले आती हैं, अपने-अपने भाई, बन्धुओं, रिश्तेदारों को देती हैं। उन्हें मंगल-आशीर्वाद का रूप माना जाता है। बदले में उन बेटियों को सम्मान में यथा शक्ति दक्षिणा देने की परम्परा है। बालिकाएं महाराज श्री को भुजरियाँ देने लगीं। उन पर तो था ही क्या? पास ही छेदीलाल पंडित बैठे हुए थे। उनसे देने को कुछ माँगा। पंडित जी ने चार चवन्नी दीं। आपने उन्हें अपने करुआ में डाल दिया। जो भी कन्या आवे उसे निकाल कर एक चवन्नी दे दें। चवन्नी आज के बीस रुपए के बराबर

मूल्यवान थी। पूरे गांव की बच्चियाँ ले गईं। तदनन्तर रात आने को हुई। पण्डित जी की चारों चवन्नी निकाल कर उन्हें लौटा दीं। जिसकी चर्चा आज भी आए दिन चलती ही रहती है। केवल यही नहीं, ऐसी बहुत सी घटनाएं हैं।

*****

रामकथा में शंकर जी का आगमन

किंतेन हेमगिरिणा रजताद्रिणावा यस्याश्रित स्तर वस्तरवस्त एवः।
मन्याम हे मलय चन्दन मेव मेरू कंकोल निम्व कटुजा अपि सन्दनास्युः॥

प्रशंसा सुनी जाती है। सोने के पर्वत, चाँदी के पर्वत, किन्तु अन्ततः उनकी महिमा क्या हैं ? उनकी समीपता, निरन्तर आश्रय, सदा-सर्वदा उनका सहवास, किन्तु लाभ क्या हुआ। जितने भी पेड़-पौधे उनके समीप रहे उनमें किंचित मात्र भी सोने या चाँदी का कोई गुण नहीं आ पाया। उनके भीतर-बाहर कहीं भी किसी प्रकार का गुण-धर्म का मूल्य नहीं आ पाया, नहीं मिल पाया, दूसरी ओर मलयाचलीय चन्दन, जिसकी समीपता पाकर कंकोल, नीम, कटज आदि भी अपनी कड़वाहट छोड़कर चन्दन बन जाते हैं, समस्त गुण, धर्म ग्रहण कर लेते हैं। सन्तों में यही विशेषता है जिनका किंचित मात्र संग मिल जाए, साधुता , सिद्धि स्वतः ही उनके आश्रित को प्राप्त हो जाती है।

घटना धनेले ग्राम की है। उस समय महाराज श्री वहीं मंदिर पर रह रहे थे। महाराजश्री रामायण गान में तल्लीन थे। उनके पास सेठ रामप्रसाद

भगतजी, राजाराम बैठे हुए थे। संयोग से कहीं से एक बड़ा भारी काला बिच्छू आवाज करता बीचों-बीच आ टपका। संसार का सबसे भयंकर विषैला जन्तु देखते ही सभी भक्त डर के मारे काँपने लगे। आपने सभी भक्तों से कहा डरो मत, शंकर जी पधारे हैं, रामायण गान बन्द मत करो। परन्तु राजाराम का बोलना बन्द हो गया। बिच्छू भी उन्हीं की ओर चला। डरके मारे भाग तो नहीं सके किन्तु हाथ से उसे संकेत करने लगे, शायद दूर भगाने का मन रहा होगा। संयोग से उंगली छुई उसी में उस बिच्छू ने डंक मार दिया। राजाराम बेहोश, सभी घबरा गए। श्री महाराजश्री ने सेठ रामप्रसाद भगतजी से कहा- झाड़ दो इसे। भगत जी बोले- मैं तो कुछ जानता ही नहीं, कैसे झाड़ू? महाराजश्री बोले हम बलताए देते हैं। उनके कान में सीताराम-सीताराम बोले और कहा- इसी से झाड़ दो। सेठजी ने आज्ञा मानी, अपनी साफी से झाड़ना प्रारम्भ किया। सीताराम बोलते रहे। थोड़ी ही देर में राजाराम जी जैसे थे, वैसे ही हो गए। बिच्छू भी अदृश्य हो गया।

सभी भक्तों ने आश्चर्य किया। यहाँ तो दरी बिछी हुई थी। कोई बिल नहीं, ऐसी जगह नहीं, बिच्छू कहाँ चला गया। इसी अलौकिक चरित्र से श्री रामचरित एवं रामनाम की निष्ठा वे प्रतिष्ठित करते रहे।

*****

लक्ष्मीजी की अनन्त कृपा

दानं भोगो नासस्त्रि स्त्रयो गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गति र्भवति॥

धन की तीन ही गतियाँ हैं। प्रयोगरूप तीन ही हैं- प्रथम दान, द्वितीय भोग, तृतीय नाश। जिनके पास यह धन पहुँच जाय, तो हम प्रत्यक्ष व्यवहार में नित्य देखते हैं, अनुभव करते हैं- धन का सर्वश्रेष्ठतम उपयोग है दान। यह दान सबसे संभव नहीं। दूसरा उपयोग है भोग। किन्तु जो न देता है, न भोग ही करता है। उसका तीसरा परिणाम नाश ही शेष रह जाता है जिसका नाश के अतिरिक्त कोई दूसरा रूप नहीं। परिमआम नहीं।

दान और संग्रह के स्वरूप पर विचार करें तो स्पष्ट है संसार में सबसे अधिक नीचाई समुद्र की है। यों उसका रूप सबसे बड़ा है। सारी धरती को चारों ओर से घेरे हुए है। उसकी कोई सीमा नहीं, असीम है। जल का अधिष्ठान है और ऊपर की ओर दृष्टि करें तो अनन्त आकाश में सबसे ऊपर बादल मंडराते हुए हैं। बादलों का काम है पानी बरसाना। तो स्पष्ट हुआ जो सबसे अयाचित भाव से, अप्रार्थित रूप से देखता है वह देने वाला है। सबके ऊपर दाता है। सभी के सिर पर है और उसके बादल के द्वारा बरसाया हुआ जल गिरि, कानन, सर, सरोवर, सरिताओं द्वारा समुद्र में जा रहा है। समुद्र संग्रह कर रहा है तो जो संग्रह करने वाला है कण-कण ढो-ढोकर इकट्ठा कर रहा है। वह सबसे नीचे है। जल वही है एक है किन्तु संग्रही सागर का वही जल खारी है और देने वाला दाता बादलों द्वारा बरसाया हुआ वह पानी मधुर है। तात्पर्य यह है कि सूम का संग्रह किया हुआ धन किसी प्रयोजन का नहीं। दानी के द्वारा दिया हुआ कण-कण भी जड़-चेतन सभी के लिए जीवन और मंगलकारी होता है।

महाराजश्री ने जीवन भर कितनी सम्पत्ति बाँटी, साधु, ब्राह्मण दीनसेवा

में लगाई, भगवद् मन्दिर एवं यज्ञादि शुचि कार्यों में लगाई, कुबेर जी भी चुकता हिसाब नहीं दे पाएंगे। दूसरा आश्चर्य कहाँ से लक्ष्मी जी महाराज श्री के आसन पर वर्षा करती रहतीं कि संभालने वाले भी हैरान ही रहे। कभी-कभी हम संसारियों को यह सब कौतूहल या तिलस्म प्रतीत होता रहा।

खेरागढ़ उत्सव हुआ, सुप्रसिद्ध चौबेजी की रामलीला बुलाई। सब कुछ हो जाने के बाद लीला विदाई की चर्चा आई तो पास ही अनन्त श्री विभूषित रामजी शास्त्री, आचार्य दामोदर शास्त्री जी बैठे थे। सहसा महाराज श्री ने पूछा क्या देना है ? बतलाया गया अठारह हजार देना है। संकेत किया बटुआ उठाओ। शास्त्री जी ने बटुआ देखा तो लगा, क्या है इसमें। बाद में धीरे-धीरे नोट निकालना प्रारम्भ किया। पता नहीं उसी क्रम में से उसमें से अठारह हजार रुपए निकल आए। सभी विस्मय विमुग्ध होकर माँ लक्ष्मी जी की अनन्त कृपा का अनुभव कर गद्‌गद् हो गए। प्रसन्नतापूर्वक चौबेजी भी प्रसन्न होकर पधारे।

इस प्रकार की दिव्य घटनाएँ उत्सव के अवसर पर तो प्रायः जन सामान्य के भी प्रत्यक्ष अनुभव में आती रहीं।

ओरछा रामराजा में उत्सव हुआ। उस समय मन्दिर भी अपने इस स्वरूप में नहीं था। महाराज श्री भी स्वयं टाट लपेटते थे। वहाँ महाराजश्री ने ऐसी सुविशाल व्यवस्था की कि प्रत्येक उपयोगी वस्तुओं के ढेर लग जाएं, पर्वत शिखर से प्रतीत हों। चाहे हरी साग, भाजी, गाजर-मटर, आलू, मिर्ची, धनिया हो या घी-चीनी, आटा-दाल, चावल जिसकी जैसी इच्छा हो चाहे जितनी भरके ले जाएँ, बेतवा नदी का किनारा पट गया। जिधर देखो उधर यही दृश्य दिखलाई पड़ता था। कहीं रावटी तम्बू, कहीं चौड़े में धूना। इच्छानुसार प्रसाद भोजन बन रहे हैं, जयजयकार हो रही है। श्रीरामजी शास्त्री रघुवीरदास, दामोदरप्रसाद आदि कुछ सन्तों ने जाकर महाराजश्री से चर्चा की। ऐसे कैसे काम चलेगा ? यह सब क्या हो रहा है, जिसे जो लेना है,

ले जा रहा है। कोई अंधेर नगरी बना रखी है। महाराजश्री बोले यह तो राजा का उदार दरबार है । देने वाला दे रहा है, लेने वाला ले रहा है। देखने वाले देख रहे हैं, हम तो केवल देखने वाले हैं, न देने वाले हैं, न लेने वाले हैं। तुम भी देखो। आनन्द लो। सभी के मुँह से एक ही आवाज सुनाई दे रही थी-

'ऐसौ को उदार जग मांही'

चित्रकूट के उत्सव में तो स्थिति यहाँ तक आ गई कि वहाँ के आदिवासी, बनवासी अपने कपड़ों में देगची आदि बर्तनों में भण्डारे का प्रसाद भरें पोटली बांधकर ले चलें, तो स्थान के महात्मा बाबा श्री जगन्नाथ दास, रामेश्वरदास महाराजश्री के पास जाकर बोले। महाराज जी हो गया सब ? ऐसे कैसे काम चलेगा ? महाराजश्री ने पूछा- क्या हो गया ? बोले यहाँ के ये बनवासी-आदिवासी, ग्रामीण तो अपने बड़े-बड़े बर्तन भर रहे हैं। पोटली बाँध रहे हैं। ढो-ढोकर ले जा रहे हैं। महाराजश्री बोले भैया यह तो हमारे रामजी से भी बड़े हैं। उनके रिश्तेदार हैं क्यों ? जब हमारे प्रभु यहां बनवास में रहे तो इन्होंने उनकी बारह वर्ष सेवा की। हम बारह घन्टे तो करें। बस यही अनुभव हो रहा था-

महाभीर भूपति के द्वारे, रजहोइ जाय परवान पंवारे।

*****

आदर्श साधु स्वरूप

घृष्टं-घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम्।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षु दण्डम्॥
दग्धं-दग्धं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णम्।
न प्राणान्ते प्रकृति विकृति जयिते उत्तमानाम्॥

चन्दन को बार-बार घिसने-रगड़ने से उसमें से अच्छी गंध आती है। बार-बार गन्ने को चबाए जाने पर और अधिक मीठा लगता है। बार-बार तपाए जाने पर सोने का रंग और सुन्दर हो जाता है। श्रेष्ठ पुरुषों की मृत्यु हो जाने पर भी उनके उत्तम स्वभाव में परिवर्तन नहीं होता।

प्रकृति का साँचा, भाव के जिस भी तत्व का रूप ले लेता है फिर किसी भी अवस्था, देश, काल, परिस्थिति में संयोग से पहुँच जाय किन्तु उसमें परिवर्तन नहीं होता, कोई प्रतिकार का भाव नहीं आता। उसका विश्व के व्यवहार से अपना निराला ही रूप हो जाता है। प्रत्यक्ष देखते हैं, नित्य अनुभव करते हैं लोहे से बनी हुई वस्तु जब तक रहेगी उसमें लोहापना रहेगा, सोने से बनी वस्तु में अन्ततः सोनापना रहेगा। चाहे ठोको-पीटो, जलाओ, सोनापना नहीं जायगा। नमक से बनी शकल में चाहे जो बने, गुड़-खांड़ से चाहे जो रूप बने किन्तु उनमें जिस सत्ता से उनका निर्माण हुआ है वह तत्व कभी किसी देशकाल परिस्थिति में अपने मूल तत्व को नहीं छोड़ सकता।

पूज्य श्री महाराज श्री का स्वरूप निरन्तर सन्तों का आश्रय पाकर नारद की भाँति सामान्य जन्मधारी मानव से लेकर अवतारी महापुरुष बनने में समर्थ हुआ। उसी भाँति आप भी संसार से सर्वथा असंपृक्त रहकर नूराबाद कचहरी में शासकीय सेवा में रत-रहकर भी दानपुण्य, दीन सेवा, अभवलीला, कथा, रामनाम से कीर्तन एवं तपसी जी महाराज की सेवा में ही

संलग्न रहे। अपनी अन्तर्निष्ठा को अन्दर संभाले हुए श्रीराम प्रेम के दीवाने, अपने नाम को तपसी जी महाराज से सिद्ध कराकर जगमोहन से मनमोहन, भुवन मोहन, भगवत मोहन तक पहुँचे, समर्थ बने। भगवान के उत्सवों को ही सर्वस्व मानकर, एक मात्र कर्तव्य मानकर, अपना पूरा वेतन एवं ममता की प्रिय वस्तुओं को श्रीराम जी के उत्सव, तपसी जी महाराज की सेवा एवं दीनों की सेवा में ही लगाते रहे। इसके अतिरिक्त उनका अपना कहने को कोई भी न था।

सन् 1981 के पश्चात् कचहरी मुरैना गई, तपसी महाराज अवध पधार गए। आप भी अपनी नौकरी सब छोड़छाड़ कर चल पड़े। पहले दो वर्ष गुरु शोध में भटके, अनन्तर तीन वर्ष छः माह बड़ोखर हनुमान जी पर खड़े-खड़े आराधना की, जिसमें छः महीने सोए भी नहीं। पुनश्च गुरुचरणों में हनुमानाज्ञा लेकर आए तो गुरुदेव ने आज्ञा कर दी- भैया रामनाम का झण्डा लेकर गाँव-गाँव भगवन्नाम एवं श्रीराम कथा का प्रसार करो। श्री हनुमान जी एवं गुरु आज्ञा से विचरण किया। प्रारम्भ में शरीर पर कोई वस्त्र नहीं था। टाट की बोरी, रात में उसमें छेद कर रखा था, सिर डालकर ओढ़ लेना। वही गादी, वही रजाई दिन में बिछा लेना। मिट्टी का करुआ एक मात्र पात्र, बस इतना ही आपके साथ था।

पुनश्च तारुण्य की देहली पर युवावस्था के साथ मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, बुन्देलखण्ड, मध्यभारत तक के क्षेत्र में गाँव-गाँव नगर में श्रीराम चरित मानस एवं कीर्तन मण्डल स्थापित किए। उनकी यह श्रीराम कथा, श्रीराम नाम की गंगा अजस्र रूप में आज भी उसी भाँति प्रसार-विस्तार पाकर फलवती है और सदा रहेगी।

यदा-कदा ऐसे अवसर भी आए कि कभी कहीं संयोगबश अकेले ही किसी गाँव या बस्ती के पास रुकना पड़ा। अज्ञात अपरिचित क्षेत्र वहाँ के

कुछ मनचले ऐसे लोग भी आ गए। महाराजश्री के पास आकर दण्डवत, प्रणाम भी नहीं करते, उलटे कहते-बाबा जी के पास मत जाओ। कोई टाट की बोरी देखकर वस्त्रों की बात करता कि रात आ रही है तो कटते नहीं- उन्होंने सब छोड़ रखा है, पास भी मत जाओ। कुछ कहते भाई! सर्दी ज्यादा है, अलाव तो जला दो तो उन्हीं में से कुछ कहते- नहीं भाई! उन्हें अग्नि की भी आवश्यकता नहीं है। भोजन पानी की कहते तो कुछ कहने लगते- नहीं, बाबा तो अपनी सिद्धि में हैं कुछ खाते-पीते नहीं। इतना देख सुनकर, उसी को अपने प्रारब्ध का विधान मानकर उसी में प्रसन्न रहे। अपने अराध्य से ही मिलकर निर्वाह कर लिया। न किसी परिस्थिति ने प्रभावित किया न मन को मलीन होने दिया।

एक बार ऐसा संयोग बना, प्रयागराज कुंभ में श्री रघुनाथदासजी छोटी छावनी वाले अपने खालसा में लिवा गए तख्त पर बिराजमान किया। वे चले गए। थोड़ी देर में उनके स्थान का कोतवाल आया। उसने महाराज श्री का हाथ पकड़कर बाहर निकाल दिया किन्तु यह अनादर और पूर्व का आदर उस व्यक्तित्व को कहाँ प्रभावित कर सका था जहाँ-

मुख प्रसन्न मन राग न रोसू।

अथच सम्मान निरादर आदर ही।

वे तितिक्षा के क्षितिज पर दीनता देवी के अंक में उस साधुता की धीरता के सिंहासन पर पहुँच गए जहाँ इन भौतिक दुर्बलताएँ, उनकी गंध कभी नहीं फटक सकती।

*****

तीर्थ-निर्माण

देवता रमनं यस्तु यस्तु कुलेकार यत्यापि।
मातृतः पितृताश्चैव लक्ष्य कोटि कुलान्वितः ॥
कल्पत्रयं विष्णुपदं तिज्हतेव न संशयः।

जिन कर्मों के द्वारा सर्वान्तर्यामी हरि प्रसन्न हो जायँ, वास्तव में वे ही तो कर्म हैं। शेष कर्म व्यर्थ-संसार बंधन को कसने वाले हैं। चौरासी के चक्कर में जकड़ने वाले हैं, जीव को पकड़ने वाले हैं। जिस जन्म से फिर जन्म धारण करना पड़े, वह जन्म न होकर जंजाल है। वही जन्म सार्थक है जिसे लेकर फिर जन्म न लेना पड़े। आयु वही सार्थक है जिसकी प्रत्येक श्वांस श्रीहरि के काम आवे। नहीं तो वह आयु निरर्थक है, समय का दुरुपयोग है। उसी मन को मन कहा जा सकता है जो मनमोहन की माधुरी मूरति में फँसा रहे। जो मन विषयों का मनन करे वह तो बहेलिया है। उसका काम तो निरन्तर हिंसा करके पाप की गठरी को गुरु बनाना है। वचन वे ही सार्थक हैं जिनके द्वारा श्रीहरि के सुमधुर नामों का निरन्तर उच्चारण होता रहे। भगवान के गुणों को छोड़कर दूसरी बात बोले ही नहीं।

1. शुद्ध कुल में जन्म शैक्ल जन्म कहलाता है।

2. जन्म लेकर भी द्विजाति संस्कार यज्ञोपवीत एवं गायत्रीजप सावित्र जन्म है।

3. वेदाध्ययन के बाद यज्ञों की दीक्षा लेना याज्ञिक जन्म है।

ये तीनों जन्म विधि-विधान पूर्वक श्रेष्ठ भी हों, किन्तु इनके भी करने से यदि हृदय में भगवद्भक्ति उत्पन्न नहीं होती तो यह महत्वहीन है। चाहे आप जितने वेदोक्त शुभ कर्म कीजिये, आपकी आयु मन्वन्तर या कल्प की हो जाय, चाहे आप चारों वेदों के वक्ता ही क्यों न हों, चाहे आप तपस्या करके सर्वश्रेष्ठ प्रभावशाली बन जाएं, चाहे आपकी स्मरण शक्ति कितनी

भी तीव्र क्यों न हो, चाहे आप भारी बलवान बना जाएं, चाहे आप योगशास्त्र के कितने ही प्रखर वक्ता बन जाएं, चाहे सांख्यशास्त्र, न्यायशास्त्र के कितने भी धुरन्धर विद्वान क्यों न हों, यदि इन सबसे सर्वान्तरयामी प्रभु के पाद पद्मों में प्रीति न हो, भगवान की भक्ति न हो तो सब व्यर्थ है, निरर्थक है। बन्धन के कारण हैं।

जो भगवान के मंदिर बनवाता है वह व्यक्ति मातृ और पितृ कुल की लाखों पीढ़ियों सहित तीन कल्प तक विष्णुलोक में रहता है, इसमें कोई संशय नहीं है-

दुनियां ऊपर राज है, राजा ऊपर सन्त।
सन्तनि ऊपर रामदास हैं, कोई राम कहंत॥

लोक में पुरुषार्थ और प्रतिष्ठा तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति शान्ति, समृद्धि एवं यश प्राप्त करता है। राजा, महाराजाओं का इतिहास एवं पुराण साक्षी हैं। जिन्होंने लोककल्याण, परमार्थ में सम्पत्ति लगाई वे आज भी अमर हैं। विचार करने से स्पष्ट होता है कि राजा, महाराजाओं की सम्पत्ति निधि स्वयं के श्रम से अर्जित नहीं वह तो उन्हें विरासत में प्राप्त हुई। किन्हीं विशिष्ट विभूतियों ने अपनी मेधा, प्रतिभा से सम्पत्ति अर्जित की किन्तु परमार्थ में कितनी लगाई। श्रीमन्त एवं नरेशों ने बड़े-बड़े बादशाहों पर जिस सम्पत्ति के स्वामी रहे, वह वस्तुतः गरीबों के कठोर श्रम से उपार्जित कराधान से संचित निधि रही। वे कमाने वाले नहीं, खर्च करने वाले रहे। अपने पुरुषार्थ, परिश्रम एवं बुद्धि से उपार्जित करें और फिर सर्वस्व सम्पदा परमार्थ में ही नियोजित करें, लगावें, ऐसे तो विरले ही सन्त होते हैं। संयोग से सुबुद्धि एवं सुकृत का धन आ जाय, तो संभव है एकाध मन्दिर बन जाय। बाद में उसकी सेवा पूजा व्यवस्था हो जाय, अन्यथा कितने ही मन्दिर आज धूल में मिलते जा रहे हैं। कुछ तो मूर्ति विहीन हैं, कुछ ऐसी जर्जर अवस्था में अवलोकनीय लोक में खड़े हैं।